बहुरूपी गांधी

बहुरूपी गांधी

अनु बंद्योपाध्याय

प्रस्तावना

जवाहरलाल नेहरू

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

अगस्त १९७१ : श्रावण १८९३

P. U. 10T

चित्रकार : श्री आर० के० लक्ष्मण

मूल्य : रु० २.२०

प्रकाशन विभाग में सैयद ऐनुल आबेदीन, सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान भवन, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली १६ द्वारा प्रकाशित तथा दी कैक्सटन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, रानी झाँसी रोड, झंडेवालान, नई दिल्ली ५५ में मुद्रित।

माँ को

जिसने मुझे सब कामों की कद्र करना और खुशी से उन सभी में हाथ लगाना सिखाया

प्रस्तावना

प्रधान मंत्री भवन
नई दिल्ली

यह पुस्तक बच्चों के लिए है। लेकिन मुझे यकीन है कि बहुत-से बड़े लोग भी इसे खुशी से पढ़ेंगे और लाभ उठाएँगे।

गांधीजी को लेकर कितने ही किस्से-कहानियाँ बन चुकी हैं। उन्हें जिन्होंने देखा नहीं है, खासतौर से आजकल के बच्चों ने, वे जरूर सोचते होंगे कि वह कोई बहुत ही अनोखे व्यक्ति या अलौकिक पुरुष थे जिन्होंने बड़े-बड़े काम किए। इसलिए उन लोगों के सामने उनके जीवन की मामूली झाँकियाँ रखना जरूरी है। इस किताब में यही किया गया है।

सुनकर ताज्जुब होता है कि वह कितनी चीजों में दिलचस्पी लेते थे, और जब दिलचस्पी लेते थे तो पूरी तरह लेते थे। उनकी यह दिलचस्पी दिखावा मात्र नहीं होती थी। जिन चीजों को मामूली या छोटी चीजें समझा जाता है, उनको भी वह बहुत लगन और कुशलता के साथ करते थ, और यही बात उनकी इन्सानियत को उजागर करती है। उनके चरित्र का यही आधार था।

मुझे खुशी है कि ऐसी पुस्तक लिखी गई जिसमें हमें बताया गया है कि गांधीजी राजनीति और सार्वजनिक जीवन के अलावा और किस-किस तरह के काम किया करते थे। इससे शायद उनको हम और अच्छी तरह समझ सकेंगे।

नई दिल्ली
जवाहरलाल नेहरू

१० मार्च, १९६४

दो शब्द

इस पुस्तक की पांडुलिपि मेरे पास सन् १९४९ से पड़ी थी। सन् १९४८ में बंगाल के कस्तूरबा प्रशिक्षण केन्द्र से काम छोड़ देने के बाद मैंने श्री डी०जी० तेन्दुलकर की पुस्तक 'महात्मा' की पांडुलिपि पढ़ी। तीन वर्ष बाद गाँव में काम करते हुए मैंने देखा, मेरे आसपास के ग्रामीण लोग तथा मेरी छात्राएँ गांधी के बारे में कुछ विशेष नहीं जानती थीं। वे गांधी जयंती मनाते थे, प्रतिदिन सूत कातते थे और प्रार्थना भी किया करते थे। उनमें से कुछ लोगों ने तो स्वाधीनता आंदोलन में भाग लिया था और जेल भी गए थे। फिर भी वे यह नहीं जानते थे कि मूलत: गांधी ने क्या सिखाया। हो सकता है कि मैंने ही उन्हें गलत समझा हो किन्तु उन दिनों मुझे ऐसा ही महसूस हुआ था।

आज भी प्रतिदिन तरह-तरह के लोगों के संपर्क में आने पर मेरी वही धारणा होती है। इनमें बहुत से लोग शिक्षित होते हैं और सभी शारीरिक श्रम करने से कतराते हैं। मेरा भी शारीरिक श्रम की महत्ता में विश्वास नहीं, परंतु मैं जानती हूँ कि शारीरिक श्रम में कितनी यंत्रणा होती है और इसलिए प्रतिदिन नौकरों के काम में हाथ बटाने का प्रयत्न करती हूँ जिससे मुझमें यह भावना न आए कि कुछ रुपए देकर मुझे दूसरों से काम कराने का हक मिल गया है।

सामान्यत: लोग अपनी रोजी-रोटी कमाने के लिए मजबूर होकर जो काम करते हैं, गांधी वे सब काम खुशी से करते थे, यही सिद्ध करने की मैंने चेष्टा की है। मैंने जान-बूझ कर बहुत-सी बातों को दुहराया है। गांधी के भक्तों की संख्या बढ़ाने की मेरी इच्छा नहीं है। मैं तो इतना ही चाहती हूँ कि बच्चे यह जान जाएँ कि गांधी केवल राष्ट्रपिता और स्वाधीनता के निर्माता ही नहीं थे। इतना जान लेने के बाद वे भले ही उनकी आलोचना करें।

मूलत: किशोरों के लिए लिखी गई इस पुस्तक की परिकल्पना मेरी है। प्राय: सभी तथ्य श्री तेन्दुलकर की पुस्तक 'महात्मा' से चुने गए हैं। इस छोटी-सी पुस्तक के लिए मैं उनकी कितनी आभारी हूँ इसे शब्दों में बता नहीं सकती। इस पुस्तक का अधिकांश भाग बंगला में 'आनंद बाजार' और 'युगांतर' में प्रकाशित हो चुका है। श्री चलपति राव की भी मैं आभारी हूँ जिन्होंने 'नेशनल हैराल्ड' में अंग्रेजी में लिखे इसके बीस लेख धारावाहिक रूप में छापे थे।

मैं श्री आर० के० लक्ष्मण की भी ऋणी हूँ जिन्होंने इस पुस्तक के लिए चित्र बनाए हैं।

जवाहरलालजी ने अत्यंत कृपा करके इस पुस्तक की भूमिका लिखने का जो कष्ट किया उसके लिए मैं उनकी हृदय से आभारी हूँ।

हजारों युवा पाठकों में से यदि एक ने भी गांधी के दिखाए मार्ग का अनुसरण किया तो इससे मुझे हार्दिक प्रसन्नता होगी।

अनु बंद्योपाध्याय

विषय-सूची

कर्मयोगी

दक्षिण अफ्रीका में एक नामी भारतीय बैरिस्टर अपने मुवक्किलों को सलाह दिया करते थे कि मुकदमेबाज़ी में अपने को बर्बाद न करो और अपना झगड़ा अदालत के बाहर आपस में तै कर लो या पंच करा लो। अपने अवकाश के समय में वह हिन्दुओं, मुसलमानों, ईसाइयों, पारसियों, बौद्धों और जैनों आदि की धार्मिक पुस्तकें पढ़ा करते थे। वे ज्ञान-दर्शन आदि की अन्य पुस्तकें भी पढ़ते थे। इन पुस्तकों के अध्ययन और आत्म-मंथन से वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि हर व्यक्ति को प्रतिदिन कुछ शारीरिक मेहनत करना चाहिए; केवल दिमागी काम करना ही काफी नहीं है। साक्षर और निरक्षर, डाक्टर और वकील, नाई और भंगी, सभी को उनके काम के लिए बराबर वेतन मिलना चाहिए।

उन्होंने धीरे-धीरे अपने जीवन का रंगढंग बदल लिया और जो भी काम उनके सामने होता उसमें हाथ बँटाने लगे। उन्होंने एक आश्रम स्थापित कर उसमें अपने मित्रों और परिवार के सदस्यों के साथ मिलकर रहने का निश्चय किया। उनके कुछ यूरोपीय मित्र भी इस आश्रम में रहने के लिए आए। सब आश्रमवासी खेती-बारी और साधारण किसानों की तरह कठिन श्रम करते थे। आश्रम में कोई नौकर नहीं रखा गया था। फार्म या आश्रम में हिन्दू और मुसलमान, ईसाई और पारसी, ब्राह्मण और शूद्र, मजदूर और बैरिस्टर, गोरे और काले, सभी लोग एक बड़े परिवार के सदस्यों की तरह रहते थे। वे सब लोग एक ही कमरे में बैठकर, एक ही रसोई में बना भोजन साथ-साथ खाया करते थे। उनका भोजन सादा होता और उनके कपड़े मोटे-झोटे। हर सदस्य को अपने मासिक खर्च के लिए चालीस रुपए मिलते थे। उक्त बैरिस्टर महोदय भी उतना ही खर्च करते थे, यद्यपि उस समय वह वकालत से प्रति मास चार हजार रुपए कमाते थे। अन्य आश्रमवासियों की तरह वह भी नियमपूर्वक कड़ी मेहनत करते और चौबीस घंटे में सिर्फ पाँच-छः घंटे आराम करते थे।

एक बार फार्म में टीन की छत वाली झोंपड़ी बनाई जा रही थी। उसकी छत डालने के लिए वे ऊपर चढ़ गए। वह मोटे कपड़े की नीली 'ओवरआल' (काम की पोशाक) पहने हुए थे, जिसमें कई जेबें थीं। किसी में छोटे-बड़े पेंच और कीलें भरी थीं। एक जेब से

हथौड़ी झाँक रही थी। एक छोटी आरी और वर्मी उनकी कमर-पेटी से लटक रही थी। कई दिनों तक वे कड़ी धूप में अपनी हथौड़ी और आरी से काम में जुटे रहे।

एक दिन, दोपहर का भोजन करने के बाद वह किताबों की एक रैक बनाने बैठे। लगातार सात घंटे तक काम करके उन्होंने छत तक ऊँची टाँड़ तैयार कर डाली। आश्रम को आने वाली एक सड़क को पक्का करने की जरूरत थी, लेकिन उनके पास इसके लिए काफी धन नहीं था। वह रोज टहलने जाते थे और लौटते समय रास्ते में पड़े छोटे-छोटे पत्थरों को इकट्ठा कर लाते। उनके साथियों ने भी उनका अनुकरण किया और थोड़े ही समय में सड़क पर बिछाने के लिए काफी रोड़ी और पत्थर इकट्ठा हो गया। इस प्रकार वह स्वयं कार्य करके दूसरों को काम करना सिखाते। यहाँ तक कि आश्रम के बच्चे भी बागवानी करने, खाना पकाने, झाड़ू-बुहारु, बढ़ईगीरी, चमड़े का काम और छापेखाने के काम में भाग लेते थे।

सवेरे-सवेरे बैरिस्टर साहब चक्की से गेहूँ पीसते, उसके बाद पोशाक पहन कर पाँच-छह मील पैदल चल कर अपने दफ्तर जाते थे। अपने बाल भी वह स्वयं काट लेते और अपने कपड़े भी खुद धोकर इस्त्री कर लिया करते थे। आश्रम में अलग से कोई धोबी-नाई नहीं लगाते थे। एक बार एक खान में काम करने वाले भारतीय मजदूर को प्लेग हो गया तो पूरी रात जागकर उन्होंने उसकी सेवा-सुश्रुषा की। कोढ़ी के घाव धोने अथवा पाखाना साफ करने में उन्हें घिन नहीं लगती थी। आलस, भय या घृणा किसे कहते हैं, यह उन्हें मालूम ही नही था।

वह अपने अखबार के लिए लेख लिखते, स्वयं उन्हें टाइप करते, और अपने प्रेस में जा कर खुद उसे कंपोज करते थे और जरूरत पड़ने पर हाथ से मशीन चला कर उसे छापते भी थे। वे किताबों की जिल्दबन्दी में भी कुशल थे। जो हाथ ओजस्वी लेख और पत्र लिखता, चरखे पर सूत कातता, करघे पर बुनाई करता, सुई से महीन रफू करता, नए-नए व्यंजन पकाता और फल के वृक्षों तथा सब्जी के पौधों की देखभाल करता था, वह बागवानी, कुएँ से पानी खींचने, लकड़ी काटने और गाड़ी से भारी सामान उतारने और ढोने में भी उतना ही कुशल था।

अफ्रीका के जेल में उन्हें प्रतिदिन नौ घंटे कठोर पथरीली धरती को फावड़े से खोदना पड़ता था या कंबलों के फटे हुए टुकड़े सीने पड़ते थे। बहुत थक जाने पर वह ईश्वर से प्रार्थना करते थे कि मुझे शक्ति दो। कोई भी दिया गया काम पूरा न कर सकने का विचार भी उन्हें असह्य था।

आश्रम से सबसे निकट का शहर भी चालीस मील दूर था। कई बार चालीस मील पैदल चलकर शहर जाकर वह आश्रम के लिए सामान लाए। एक बार वह एक दिन में

पचपन मील चले। दक्षिण अफ्रीका में युद्ध छिड़ने पर वह चिकित्सा-टुकड़ी में स्वयंसेवक हो गए और एक बार उन्होंने स्ट्रेचर पर घायल सिपाहियों को एक साँस में तीस से चालीस मील तक ढोया। अठत्तर वर्ष की आयु में भी वह हफ्तों तक लगातार अठारह घंटे प्रतिदिन काम करते रहते थे। कभी-कभी वे दिन में बीस-इक्कीस घंटे काम करते थे। इस आयु में वह कताई के सिवा अन्य कोई शारीरिक श्रम नहीं कर सकते थे लेकिन जाड़े की सुबह में वह गाँव की पगडंडियों पर नंगे पैर प्रतिदिन तीन से पाँच मील तक टहल सकते थे। काम करने की इस लगन और शक्ति के लिए उनके दक्षिण अफ्रीकी सहयोगियों ने उन्हें 'कर्मवीर' की उपाधि दी।

ये कर्मवीर बैरिस्टर थे—मोहनदास करमचंद गांधी। उनका जन्म २ अक्तूबर, १८६९ को पोरबंदर में हुआ था।

बैरिस्टर

मोहनदास गांधी ने अठारह वर्ष की आयु में मैट्रिक पास किया। इसके बाद वह कानून पढ़ने के लिए लन्दन गए। कट्टर नेम-धरम और छुआछूत मानने वाले मोढ़ बनिया की जाति में वह पहले थे जो विलायत गए। लन्दन के इनर टेम्पल कानूनी संस्था में भरती होने के बाद गांधी जान पाए कि कानून की परीक्षा पास करना बहुत आसान है। पाठ्य-पुस्तकों के नोट दो महीने में पढ़कर बहुत से लोग परीक्षाएँ पास कर लेते थे। पर नोट पढ़ने का यह आसान तरीका गांधी को नहीं भाया। परीक्षक को धोखा देना उन्हें पसन्द नहीं था। उन्होंने मूल पाठ्य-पुस्तकें पढ़ने का निश्चय किया और काफी पैसा खर्च करके कानून की पुस्तकों को खरीदा। उन्हें कॉमन लॉ पर मोटी-मोटी किताबें पढ़नी पड़ीं। उन्होंने लेटिन भाषा सीखी और रोमन कानून की पुस्तकें मूल लेटिन में पढ़ी। उस समय के बैरिस्टर 'डिनर बैरिस्टर' कहे जाते थे क्योंकि उन्हें लगभग तीन वर्षों में बारह टर्म रखने होते थे। इसका मतलब था कि उन्हें कम से कम बहत्तर भोजों में शामिल होना पड़ता था। इन खर्चीले भोजों का व्यय छात्रों को चुकाना पड़ता था।

गांधी ऐसे खान-पान के आदी नहीं थे और उनकी समझ में नहीं आता था कि दावतों में शामिल होने और शराब पीने से कोई आदमी किस प्रकार अच्छा बैरिस्टर बन जाता है। फिर भी, उन्हें दावत में शरीक होना पड़ता था। वे न तो मांस खाते थे और न शराब ही पीते थे। इसलिए कानून के कई छात्र उन्हें टेबुल पर अपने साथ बैठाने को उत्सुक रहते थे ताकि उन्हें गांधी के हिस्से की भी शराब पीने को मिल सके।

मगर इन सबके बावजूद गांधी का स्वाभाविक संकोच और झेंप दूर न हो सकी। उनको बड़ी घबड़ाहट थी कि अदालत में खड़े होकर कैसे बहस करें। एक अंग्रेज वकील ने उन्हें बहुत उत्साहित किया और कहा कि कोई भी वकील मेहनत और ईमानदारी से खाने-पीने लायक कमा सकता है। "अगर तुम किसी मामले के तथ्यों को अच्छी तरह पकड़ लो तो कानून की बारीकियों में जाने की ज्यादा जरूरत नहीं, क्योंकि तीन-चौथाई कानून तो तथ्य होता है।" उन्होंने गांधी को इतिहास और सामान्य ज्ञान की पुस्तकें पढ़ने की सलाह दी। गांधी ने उनकी राय मान ली।

कुछ समय के लिए गांधी ने अंग्रेजों की नकल करने की भी कोशिश की। अंग्रेजी लहजे से बोलने, भाषण देने, अंग्रेजी ढंग का नाच सीखने, वायलिन बजाने और अंग्रेजी ढंग से कपड़े पहनने की बाकायदा तालीम ली। उन्होंने सबसे शानदार दुकान से बड़ा कीमती सूट खरीदा और दोहरी सुनहरी चेन की घड़ी और टॉप हैट लगाया व टाई बाँधने लगे। अंग्रेज युवतियों से जान-पहचान बढ़ाई। इस प्रकार धीरे-धीरे वह शौकीन जीवन की ओर बढ़ने लगे। लेकिन कुछ महीने बाद एकाएक उन्हें समझ आई कि "मैं कैसी मूर्खता कर रहा हूँ। मेरे फैशन और शौक का भार मेरे भाई पर पड़ता है। मैं इंगलैंड पढ़ाई के लिए आया हूँ, अंग्रेजों की नकल करने के लिए नहीं।" यह समझ में आते ही उन्होंने अपने रहन-सहन का तरीका बदलने का निश्चय कर लिया। उन्होंने एक कम किराए का कमरा लिया और स्टोव पर अपना नाश्ता तथा रात का भोजन स्वयं बनाने लगे। दोपहर का भोजन वह सस्ते शाकाहारी भोजनालय में करते। आने-जाने के लिए सवारी करना उन्होंने बंद कर दिया और प्रतिदिन आठ-दस मील तक पैदल चलने लगे।

नियत समय पर, इंगलैंड में बत्तीस महीने रहने के बाद गांधी ने कानून की परीक्षा पास कर ली और उनका नाम बैरिस्टरों में दर्ज कर लिया गया। इसके दो दिन बाद वे जहाज से भारत के लिए रवाना हो गए।

भारत पहुँच कर उन्होंने बम्बई में किराए पर मकान लिया और खाना बनाने को एक रसोईया रखा। वे नियमित रूप से मुख्य न्यायालय जाते और देखते कि मुकदमों में किस प्रकार बहस की जाती है। वह कई घंटे अदालत के पुस्तकालय में बैठकर भारतीय कानून की पुस्तकें पढ़ते।

उनका पहला मुकदमा मामूली-सा था। इसकी फीस तीस रुपए तय हुई। लेकिन जब बाईस वर्ष का नया-नया युवक बैरिस्टर बहस करने खड़ा हुआ तो उसकी हिम्मत छूट गई और उसकी जबान लड़खड़ाने लगी। वे एक शब्द न बोल सके और शर्मिन्दा होकर अदालत छोड़ कर चले आए। इसके बाद उसने उस अदालत में कोई भी मुकदमा हाथ में नहीं लिया।

उसके खर्चे बढ़ते गए लेकिन आय नहीं के बराबर थी। वह अर्जीदावा अच्छा तैयार करते थे लेकिन न तो यह एक बैरिस्टर का काम था और न इसमें ज्यादा पैसा ही मिलता था। छः महीने तक वकालत जमाने की बेकार कोशिश के बाद गांधी राजकोट लौट गए, अपने भाई के साथ रहने लगे तथा वहीं वकालत शुरू की। गांधी के बड़े भाई ने बड़ी आशाएँ बाँध रखी थीं कि विलायत में पढ़कर बैरिस्टरी खूब चमकेगी मगर उन्हें निराश होना पड़ा।

राजकोट में एक अन्य समस्या उठ खड़ी हुई। रिवाज के मुताबिक जो उन्हें

मुकदमे लाकर देते थे, गांधी को उन वकीलों को कुछ दलाली देना जरूरी था पर गांधी ने इससे इन्कार कर दिया। दलाली देना उनके सिद्धांत के खिलाफ था। लेकिन भाई के समझाने-बुझाने पर वह कुछ झुके। उस समय उनकी आमदनी लगभग तीन सौ रुपए मासिक हो जाती थी पर वह अपने काम से खुश नहीं थे; अदालतों में छाए झूठ के वातावरण से वह खिन्न थे।

सौभाग्यवश इसी समय उन्हें दक्षिण अफ्रीका के एक धनी व्यापारी का बुलावा मिला। वह एक मुकदमे के लिए आने-जाने के खर्च के अलावा, कुल मिलाकर पौने दो हजार रुपए देने को तैयार था। उन्होंने उसका यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और सुदूर अफ्रीका को रवाना हो गए।

उन्हें दक्षिण अफ्रीका की हालत का कोई अनुमान नहीं था। जहाज जब जंजीबार में रुका तो वह देखने गए कि वहाँ अदालतों में किस तरह काम होता है। वह बहीखाता और हिसाब-किताब नहीं समझते थे। जिस मुकदमे के सिलसिले में वह दक्षिण अफ्रीका जा रहे थे वह हिसाब-किताब का था। गांधी ने हिसाब-किताब की एक पुस्तक खरीदी और उसे खूब ध्यान से पढ़ गए।

डर्बन पहुँचने के तीसरे दिन गांधी अदालत गए। वहाँ मजिस्ट्रेट ने उनसे अपनी पगड़ी उतारने को कहा। गांधी ने इस अपमानजनक आज्ञा का पालन करने से इनकार कर दिया और अदालत से बाहर चले आए। दक्षिण अफ्रीका की भूमि पर पैर रखने के बाद से ही वे देख रहे थे कि गोरे लोग भारतीयों के साथ कितना बुरा बर्ताव करते हैं। गांधी को वह 'कुली बैरिस्टर' कहते थे। वह इन सब अपमानों से तिलमिला उठे।

अपने मुवक्किल, दादा अब्दुल्ला से उन्होंने मुकदमें के तथ्यों को तफ़सील में समझा और मामले का गहराई से अध्ययन किया। उन्हें लगा कि यदि दोनों पक्ष लंबी मुकदमेबाजी में फँसे तो दोनों ही बर्बाद हो जाएँगे। उन्हें धन या नाम कमाने के लिए अपने मुवक्किल का शोषण करना अच्छा नहीं लगा। उनका विश्वास था कि कानूनी सलाहकार के नाते उनका कर्त्तव्य तो दोनों पक्षों में समझौता व मेल कराना है। उन्होंने अपने मुवक्किल को समझाया कि मामले को अदालत से बाहर दूसरे पक्ष से बातचीत करके तै कर लो। दादा अब्दुल्ला जब हिचकिचाए, तब गांधी ने कहा : "आपकी जो गोपनीय बातें हैं, उन्हें मैं किसी को नहीं बताऊँगा। मैं उसे सिर्फ यही समझाऊँगा कि वह समझौता कर ले।"

गांधी की मध्यस्थता के बावजूद, मुकदमा एक साल चला। गांधी को इसके दौरान यह देखने का अच्छा अवसर मिला कि अच्छे एटार्नी और वकील एक पेचीदा मामले को किस

प्रकार संभालते हैं। गांधी की कोशिश से आखिर ऐसा समझौता हो गया जो दोनों पक्षों को मंजूर था। लेकिन गांधी को ऐसे पेशे से नफरत हो गई जिसमें कानूनी दाँव-पेंच से मुकदमा बरसों तक खींच दिया जाता है और मुवक्किलों से रुपया दुहा जाता है।

डर्बन में वकालत आरंभ करने के थोड़े दिन बाद बालसुंदरम नामक एक गिरमिटिया मजदूर उनके कार्यालय में आया। उसके कपड़े फटे और सामने के दो दाँत टूटे हुए थे। गोरे मालिक ने उसे मारा-पीटा था। गांधी ने उसे धीरज बँधाया, एक गोरे डाक्टर से उसकी चिकित्सा कराई और उसी से चोट के बारे में डाक्टरी सर्टीफिकेट लिया। उन्होंने बालसुंदरम की ओर से उसके मालिक पर मुकदमा चलाया और उसे जिता दिया। फिर उन्होंने उसके लिए एक ऐसा मालिक ढूँढ दिया जो बहुत भला था। इस घटना से गांधी गरीब भारतीय मजदूरों में बहुत लोकप्रिय हो गए। असहायों के रक्षक के रूप में उनकी ख्याति भारत तक फैल गई। वे अब बेसहारा लोगों के सहारा माने जाने लगे।

एक वर्ष के अनुभव से गांधी में आत्मविश्वास पैदा हुआ। अंत में इस 'कुली-बैरिस्टर' को नेटाल के सर्वोच्च न्यायालय में वकालत करने की अनुमति मिल गई। पर गोरे एटार्नी उन्हें अपने मामले नहीं देते थे। इसके अलावा, उन्होंने अपनी वकालत के रास्ते में खुद कई बाधाएँ खड़ी कर ली थीं। वे यह सिद्ध करने को तुल गए थे कि वकील का पेशा झूठों का पेशा नहीं है। वह कोई भी मुकदमा जीतने के लिए कभी झूठ नहीं बोलते और न किसी गवाह को सिखाते-पढ़ाते थे। उनका मुवक्किल जीते या हारे, वह सामान्य मेहनताने से कम या ज्यादा नहीं लेते थे। वह बकाया फीस के भुगतान के लिए अपने मुवक्किलों से तगादा नहीं करते और वसूली के लिए या अन्य किसी निजी शिकायत के लिए किसी पर मुकदमा नहीं चलाते थे। दक्षिण अफ्रीका में उन्हें बार बार मारा-पीटा गया, लेकिन हर बार उन्होंने अपराधियों को अदालत में घसीटने और उनको सजा कराने से इन्कार कर दिया। अपनी बीस साल की वकालत के दौरान उन्होंने सैकड़ों मामलों में अदालत के बाहर समझौता करा दिया।

एक बार, मुकदमे के बीच उन्हें पता चला कि उनका मुवक्किल बेईमान है। उन्होंने तुरंत मजिस्ट्रेट से मुकदमे को बरखास्त करने का अनुरोध किया और झूठा मुकदमा लाने के लिए अपने मुवक्किल को बहुत डाँटा। गांधी ने एक बार कहा था : "मैने एक द्वितीय श्रेणी के वकील के रूप में काम आरंभ किया था। मेरे मुवक्किल मेरे कानूनी दाँवपेच से बिल्कुल प्रभावित नहीं होते थे, लेकिन जब वे देखते कि मैं किसी भी हालत में सत्य से नहीं टलूँगा तब वे मेरे हो जाते थे।" उनके बहुत से मुवक्किल, उनके मित्र और सहयोगी बन गए। उन्होंने अपनी ईमानदारी की ऐसी साख जमा ली थी कि एक बार

उन्होंने एक मुवक्किल को जेल जाने से बचा लिया। उनका यह पुराना मुवक्किल बिना चुंगी-कर दिए चोरी से माल मँगाया करता था। जब वह फँस गया, तब उसने गांधी को सच्ची बात बताई। गांधी ने उससे कहा : "अपना अपराध स्वीकार कर लो और जो दंड मिले उसे मंजूर करो।" गांधी एटार्नी जनरल और कस्टम अफसर से मिले और उनको सारा मामला सच-सच बता दिया। उनकी सचाई की ऐसी साख थी कि अपराधी को केवल जुर्माना करके छोड़ दिया गया। कृतज्ञतावश मुवक्किल ने सारी घटना को छपवा और मँढवा कर अपने दफ्तर के कमरे में टँगवा दिया।

एक बार गांधी के एक मुवक्किल ने बही-खाते मे एक गलत इन्दराज किया था। गांधी ने मुकदमे के दौरान विरोधी को स्वयं यह गलती बताई और बड़ी योग्यता के साथ अपने मुवक्किल के पक्ष की पैरवी की। जिस जज ने पहले गांधी पर चालबाजी का आरोप लगाया था, उसीने अब गांधी के मुवक्किल के पक्ष में निर्णय दिया। उसने दूसरे पक्ष से पूछा : "मान लो कि गांधी ने इस गलती को स्वीकार नहीं किया होता, तो आप क्या करते ?" गांधी बड़ी कुशलता से जिरह करते थे। जज और वकील सभी उनका सम्मान करते थे। कई गोरे भी उनके मुवक्किल थे।

भारत और दक्षिण अफ्रीका, दोनों जगह उन्होंने देखा कि यूरोपियनों के विरुद्ध भारतीयों को न्याय नहीं मिलता, और उन्हें कहना पड़ा : "क्या भारत में एक भी अँग्रेज को नृशंस हत्या करने पर मृत्यु-दंड दिया गया है ? एक अँग्रेज अफसर पर जान-बूझकर निर्दोष नीग्रो लोगों को सताने का अपराध साबित हो गया परंतु उसे नाममात्र की सजा दी गई। यह न्याय नहीं, न्याय का मजाक उड़ाना है।"

कठोरता से नियम पालन करने, सच्चाई बरतने और कानून को त्रुटिपूर्ण समझने के बावजूद गांधी को वकालत में खूब सफलता मिली। भारत में उन्होंने बहुत थोड़े समय तक वकालत की थी। दक्षिण अफ्रीका में उनकी वकालत बीस वर्ष तक चली। आरंभ में उन्होंने एक अच्छे मोहल्ले में एक मकान किराए पर लिया, और उसे बिलायती ढंग से सजाया। हर इतवार और हर छुट्टी के दिन वह अपने घर पर दावतें देते थे। उनका घर सबके लिए खुला था और वह अपने घनिष्ट मित्रों तथा मुवक्किलों को अपने साथ ठहराते थे। उनका दफ्तर उनके घर से छः मील दूर था। कई महीनों तक वह साइकिल पर आते-जाते रहे। बाद में वह पैदल जाने लगे। चूँकि भारतीयों को ट्राम के अंदर आगे की सीटों पर बैठना मना था, इसलिए वह ट्राम पर नही चढ़ते थे, हालाँकि उनको आगे बैठने की इजाजत मिल सकती थी। वह अपने को गरीब भारतीय श्रमिकों के साथ मिला देना चाहते थे और धीरे-

धीरे उन्होंने अपना जीवन बहुत सादा बना लिया। चालीस वर्ष की आयु में, जब वह चार हजार रुपया मासिक कमाने लगे तो उन्होंने वकालत छोड़ दी और अपने को अपने देश-भाइयों की सेवा के लिए समर्पित कर दिया। उन्होंने स्वदेशवासियों के लिए अपनी सारी संपत्ति दान दे दी, अपने हाथों से काम करने लगे और खेती पर गुजर करने लगे।

बहुत वर्षों बाद गांधी ने भारत में वकीलों और बैरिस्टरों के भारी फीस लेने की निन्दा की। यहाँ की अदालतों में न्याय बहुत ज्यादा महँगा है। देश की गरीबी से उसका कोई संबंध ही नही है। भारत में वकील पचास हजार से लेकर एक लाख रुपए मासिक तक कमा सकता है। गांधी ने कहा, "वकालत कोई सटोरियों का धंधा नहीं है। अगर हम वकीलों के फँदे में न फँसें तो बहुत सुखी रहें। वकालत बेईमानी सिखाती है। दोनों पक्षों की ओर से झूठे गवाह पेश होते है, जो पैसे के लिए अपना ईमान बेचते हैं।" उन्होंने अनुभव किया कि न्याय को सच्चा और सस्ता बनाने के लिए कानूनी व्यवस्था में क्रांतिकारी परिवर्तन करना जरूरी है। वह खुद, गरीब लोगों के मुकदमे बिना फीस लिए लड़ते थे और जब कोई मुकदमा किसी जनता के मामले से संबंधित होता था, तब वे वास्तविक खर्च के अलावा कुछ नहीं लेते थे। जब गरीब भारतीय प्रवासी, नगरपालिका द्वारा कुली बस्तियों से निकाले जा रहे थे, तब गांधी ने उनका पक्ष लिया। उन्होंने हर मुकदमे के लिए कड़ी मेहनत की और हर मामले के लिए उन्होंने केवल एक सौ सत्तर रुपए लिए। सत्तर मामलों में से केवल एक में गांधी हारे। इन मुकदमों से गांधी को जो आमदनी हुई, उसका आधा उन्होंने एक धर्मार्थ संस्था स्थापित करने में लगा दिया।

अपने देशवासियों को मानव-अधिकार दिलाने के लिए उन्होंने सरकार के खिलाफ आंदोलन संगठित किया। उन्हें गिरफ्तार किया गया और दक्षिण अफ्रीका तथा भारत, दोनों जगह उन पर मुकदमे चलाए गए। उन्हें कई बार कैद की सजा मिली। दक्षिण अफ्रीका में उन्हें हथकड़ी पहनकर उसी अदालत में मुजरिम के कटघरे में खड़ा होना पड़ा, जिसमें वह वकालत करते थे। भारत में पहली बार सजा पाने के बाद उनका नाम बैरिस्टरों के रजिस्टर में से काट दिया गया। गांधी ने ब्रिटिश राज की अदालतों के बहिष्कार की घोषणा की और पंचायतों को फिर से चालू करने की आवाज उठाई। उनके आह्वान पर अनेक नामी वकीलों ने अपनी वकालत छोड दी और स्वतंत्रता आंदोलन में शामिल हो गए।

वकील के एक संघ द्वारा दिए गए अभिनंदन पत्र के उत्तर में गांधी ने कहा "मेरा नाम वकीलों की सूची से काट दिया गया है, और अब कानून के ज्ञान को तो बहुत दिन हुए मैं भुला चुका हूँ। अब मैं कानून की व्याख्या करने के बजाय कानून तोड़ने में लगा हूँ।"

दर्जी

दक्षिण अफ्रीका में गांधी को दो बार कड़ी कैद की सजा मिली। कुछ हफ्तों तक उन्हें प्रतिदिन नौ-नौ घंटे कंबलों के टुकड़े सिलने और मोटा कपड़ा काटकर कमीजों की जेब बनाने का काम करना पड़ा। जब कभी वे अपना काम वक्त से पहले पूरा कर लेते तो और काम भी माँग लेते थे।

भारत की जेल में भी उन्होंने कुछ दिनों सिंगर मशीन पर कपड़े सीने का काम किया। यह काम उन्होंने स्वेच्छा से लिया था। गांधी सिलाई मशीन चलाने में निपुणता प्राप्त करना चाहते थे। जो मजदूरों की रोजी छीन ले और मनुष्य को पूँजीपतियों की मशीनों पर निर्भर करा दे, वह ऐसी बड़ी-बड़ी मशीनों के उपयोग के विरुद्ध थे। उनका सिद्धांत था कि मशीनों से बेकारी नहीं बढ़नी चाहिए। भारत में समस्या यह नहीं थी कि करोड़ों आदमियों पर काम का बोझ कम किया जाए बल्कि यह थी कि उनको काम दिया जाए। सिलाई की मशीन के वह विरोधी नहीं थे क्योंकि उनका कहना था कि जो कुछ उपयोगी यंत्र इजाद किए गए हैं उनमें सिलाई की मशीन भी एक है। सिलाई और टंकाई के काम में अपनी पत्नी की कठिनाइयाँ देखकर इसके आविष्कारक सिंगर के मन में ऐसी मशीन बनाने का विचार आया और उन्होंने पत्नी के प्रेमवश उसकी मेहनत बचाने के लिए सिलाई मशीन का आविष्कार कर डाला। उनका उद्देश्य पैसा कमाना नहीं बल्कि पत्नी के श्रम को घटाना था।

गांधी ने एक बार अपने आश्रम की एक बहन को लिखा था : "अपनी सलवार, कमीज की सिलाई की चिन्ता मत करो। मैं इसे सी सकता हूँ। हम एक सिंगर मशीन माँग लेंगे। कुछ घंटे की मेहनत से आवश्यक पोशाक तैयार हो जाएँगे।" कपड़े सीने की अपनी कुशलता पर उन्हें उचित गर्व था। वह अपनी पत्नी के ब्लाउज की कटाई और सिलाई खुद कर लेते थे। वह चरखे पर सूत कातते, हथकरघे पर उस सूत से कपड़े बुनते और उस कपड़े से अपने लिए कुर्ता सी लेते थे। वैसे कुशल दर्जी और मोची आश्रम के लोगों को कपड़े और चमड़े की सिलाई की शिक्षा मुफ्त देते थे।

जिस समय गांधी चंपारन में 'निलहे' गोरों के अत्याचारों के विरुद्ध वहाँ के किसानों

के संघर्ष का नेतृत्व कर रहे थे, उस समय एक अंग्रेज पत्रकार ने उन पर कई तरह के इलजाम लगाए। उसने लिखा कि किसानों को बरगलाने के लिए ही गांधी ने दिखावे के लिए देशी वेष-भूषा अपनाई है। गांधी ने इसके जवाब में लिखा : "स्वदेशी का व्रत लेने के बाद से मैं जो कपड़े पहनता हूँ वह मेरे या मेरे साथी कार्यकर्ताओं द्वारा हाथ से बुने और हाथ से सिले हुए होते हैं।"

गांधी ने बाद में कुर्ता पहनना भी छोड़ दिया और घुटने तक की धोती और चादर में रहने लगे। तब भी वह कभी-कभी अपने रुमाल, अँगोछे या धोती के किनारे मोड़ कर खुद ही सी लेते थे। सिलाई का काम करते समय अपने सचिव को पत्र भी लिखवाते जाते थे। आगा खाँ महल में अपनी नजरबंदी के दौरान उन्होंने जेल के सुपरिंटेंडेंट को उसके जन्मदिवस पर खादी के कुछ रुमाल बना कर भेंट किए थे। हर रुमाल पर गांधी ने सुपरिंटेंडेंट का नाम बड़ी सफाई से काढ़ा था। इस समय गांधी चौहत्तर वर्ष के थे।

गांधी का एक मनपसंद शाल फट गया था। उन्होंने अपनी देख-रेख में एक महिला से उसमें पैबंद लगवाए थे। इसी पैबंद लगे शाल को ओढ़कर गांधी अपने गरीब देशवासियों के प्रतिनिधि की हैसियत से लंदन की गोलमेज परिषद् में शामिल हुए, ब्रिटिश प्रधान मंत्री की बगल में बैठे और 'बकिंघम प्रासाद' में ब्रिटिश सम्राट् द्वारा दी गई चाय पार्टी में शामिल हुए। कीमती कपड़े उन्हें पसंद नहीं थे। लेकिन गंदे और फटे कपड़ों से भी उन्हें चिढ़ थी। एक बार एक सभा में उन्होंने देखा कि एक कार्यकर्ता के ओढ़े हुए चादर में एक छेद है। तुरंत उन्होंने यह पर्ची लिखकर उसे भिजवाई : "फटे हुए कपड़े पहनना आलस की निशानी है और शर्म की बात है, जब कि पैबंद लगे कपड़े पहनना गरीबी अथवा त्याग अथवा उद्यम का प्रतीक है। तुम्हारी चादर में जो छेद है वह मुझे अच्छा नहीं लगता। यह गरीबी या सादगी की निशानी नहीं है बल्कि इस बात की निशानी है कि या तो तुम्हारी पत्नी नहीं है, और यदि है तो वह फूहड़ है या आलसी है।"

धोबी

बैरिस्टर की हैसियत से गांधी बढ़िया और विलायती पोशाक में अदालत जाया करते थे। अपनी कमीज में वे रोज एक साफ कालर लगाते थे, हर दूसरे दिन वे कमीज बदलते थे और उनका कपड़ों की धुलाई का खर्चा काफी भारी था। धोबी अक्सर कपड़े देर से लाता था। अतः गांधी को कई जोड़े कपड़े रखने पड़ते थे, और इस पर उनका काफी पैसा खर्च होता था। तीन दर्जन कालरों और कमीजों से भी उनका काम नहीं चलता था।

गांधी अपना खर्चा घटाना चाहते थे। एक दिन वे बाजार से कपड़े धोने का सारा सामान ले आए। उन्होंने कपड़े की धुलाई की एक पुस्तक खरीदी और ध्यानपूर्वक उसको पढ़ डाला। अच्छी धुलाई की सारी विधि समझ लेने के बाद उन्होंने खुद अपने कपड़े धोना शुरू कर दिया। बेचारी कस्तूरबा को भी उन्होंने नहीं बख्शा। उन्हें भी कपड़ा धोने की कला सिखाई। गांधी का दैनिक कार्यक्रम पहले ही काफी बड़ा था और उसमें इस नए काम का बोझ और बढ़ गया लेकिन वह हार मानने वाले आदमी नहीं थे। वह धोबी की मनमानी से मुक्त होने और स्वावलंबी बनने के लिए कृतसंकल्प थे। एक दिन उन्होंने एक कालर धोया और उसमें माँड़ लगाया। इस तरह का काम उन्होंने पहले तो कभी किया नहीं था इसलिए कालर पर उन्होंने जब इस्त्री की, तो न तो वह ठीक गरम था और न उन्होंने उसे ठीक तरह से दबाकर इस्त्री की। उन्हें डर था कि कहीं कालर जल न जाए। इसके बाद उसी कालर को लगा वे अदालत गए। बहुत ज्यादा माँड़ लगाने के कारण कालर से माँड़ झर रहा था। उनके मित्र यह देखकर हँसने लगे। लेकिन गांधी इससे तनिक भी नहीं झेंपे और बोले : "कपड़ा धोने का यह मेरा पहला प्रयास है, इसलिए माँड़ ज्यादा लग गया है। लेकिन कोई हर्ज नहीं। चलो, इसकी वजह से तुम्हारा इतना मनोरंजन तो हुआ।"

"लेकिन क्या यहाँ धोबियों की कोई कमी है ?" एक मित्र ने पूछा।

"नहीं, लेकिन धुलाई का खर्चा बहुत ज्यादा है। एक कालर की धुलाई लगभग नए कालर के दाम जितनी होती है, और फिर धोबी के आसरे रहना पड़ता है। इससे अपने कपड़े आप ही धो लेना ज्यादा अच्छा है।"

बाद में तो गांधी बहुत ही कुशल धोबी बन गए। और इसकी सनद भी उन्हें बहुत बड़े आदमी से मिल गई।

दक्षिण अफ्रीका में एक बार गोपाल कृष्ण गोखले गांधी के साथ आकर ठहरे। गांधी उनमें गुरु की भाँति श्रद्धा रखते थे। गोखले को किसी महत्त्वपूर्ण पार्टी में जाना था। उनका दुपट्टा गिज गया था और उसमें सलवटें पड़ गई थीं, इतना समय नहीं था कि उसे धोबी से धुलवाया जाए। लिहाजा गांधी ने कहा कि मैं उस पर अच्छी तरह इस्त्री कर दूंगा। गोखले ने कहा : "मैं वकील की हैसियत से तुम्हारी योग्यता पर भरोसा कर सकता हूँ, लेकिन धोबी के रूप में नहीं। अगर तुमने उसे खराब कर दिया तो ? मेरे लिए यह बहुमूल्य चीज है। मेरे गुरु महामति रानडे ने यह मुझे भेंट किया था। यह उनकी निशानी है।" पर गांधी ने आग्रह किया और दुपट्टे पर इस्त्री कर दी। उनके काम से गोखले खुश हुए। इस पर गांधी को इतना हर्ष हुआ कि वह कहने लगे, "अब अगर सारी दुनिया भी मुझे अच्छे धोबी होने का प्रमाणपत्र न दे तो मुझे परवाह नहीं।"

दक्षिण अफ्रीका में गांधी के आश्रम में पानी की कमी थी और स्त्रियों को कपड़े धोने के लिए काफी दूर एक सोते पर जाना पड़ता था। गांधी इसमें उनकी मदद करते थे। खादी-उत्पादन के आरंभिक दिनों में हाथकरघे पर जो साड़ियाँ बुनी जाती थीं वे बहुत मोटी और भारी हुआ करती थीं। आश्रम की स्त्रियाँ उन साड़ियों को पहनने के लिए तो राजी हो गईं, लेकिन जब इन्हें धोना पड़ता था तब वे बड़बड़ाती थीं। इस पर गांधी ने उनसे कहा : "मैं इन साड़ियों को धो दिया करूँगा।" उन्हें दूसरों के कपड़े धोने में कोई शर्म या छोटापन नहीं लगता था। एक बार वह एक धनी व्यक्ति के यहाँ ठहरे। जब वह नहाने के लिए गुसलखाने में गए तो देखा कि गुसलखाने के फर्श पर एक सफेद धोती पड़ी हुई है। नहाने के बाद उन्होंने अपनी धोती के साथ उस धोती को भी धो डाला। इसके बाद वह गीले कपड़ों को धूप में फैलाने के लिए ले गए। गांधी सफेद कपड़ों को धूप में सुखाने पर जोर देते थे क्योंकि इससे एक तो वे और उजले दिखाई पड़ते थे और दूसरे धूप से जीवाणु भी मर जाते थे। गांधी को कपड़े फैलाते देखकर मेजबान ने कहा : "बापूजी, यह आप क्या कर रहे हैं ?" गांधी ने कहा : "क्यों इसमें क्या बुराई है ? फर्श पर पड़ी-पड़ी साफ धोती गंदी हो गई होती, इसलिए मैंने उसे धो डाला। मैं सफाई के लिए कुछ भी काम करने में नहीं शरमाता।" गांधी तो नहीं लेकिन उनके मेजबान बहुत शर्मिंदा हुए।

जेल में, अपनी वृद्धावस्था में भी गांधी कभी-कभी अपनी धोती, अँगोछा और रुमाल खुद धो डालते थे और अपने साथियों का काम हल्का कर देते थे। आगा खाँ महल में कस्तूरबा

की अंतिम बीमारी के समय गांधी उनके इस्तेमाल किए हुए रुमालों को धोया करते थे ।

अपने जीवन भर वह अपनी पोशाक पर बहुत ध्यान देते थे । बचपन में वह अन्य लड़कों के साथ होड़ लगाकर अपनी मिल की बढ़िया धोती को खूब अच्छी तरह धोते थे जिससे कि वह झकाझक हो उठती थी । खुद कुएँ से पानी खींचते और धोती धोते । गांधी को सादगी पसंद थी, लेकिन गंदे और सिकुड़े मसले कपड़ों से उन्हें चिढ़ थी । वे अपनी चादर, कच्छा और अँगोछे को बिल्कुल साफ रखते थे, और उनको गिंजा नहीं रहने देते थे । वे स्वच्छता की जीती-जागती मूर्ति थे ।

नाई

दक्षिण अफ्रीका में कदम रखने के एक सप्ताह बाद ही गांधी को अपने वकालत के काम से एक बड़े शहर में जाना पड़ा। उन्होंने एक घोड़ागाड़ी ली और कोचवान से किसी बड़े होटल में ले चलने को कहा। वहाँ पहुँचकर उन्होंने होटल के मैनेजर से एक कमरा माँगा। गोरे मैनेजर ने उन्हें सिर से पैर तक गौर से देखा और बोला: "खेद है, हमारे यहाँ कोई कमरा खाली नहीं है।" अतः गांधी को रात अपने एक भारतीय मित्र की दूकान में गुजारनी पड़ी। उन्होंने जब होटलवाले की बात अपने मित्र को बताई तो उसने कहा, "आप किसी होटल में जगह पाने की आशा ही कैसे करते थे ?" "क्यों नही" गांधी ने आश्चर्य से पूछा। मित्र ने कहा : "खैर आप धीरे-धीरे सारी बात समझ जाएँगे।" और सचमुच ही धीरे-धीरे गांधी को पता चला कि दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों को कितना अपमान सहना पड़ता है। उन्हें चाँटा मारा गया, घूँसे और ठोकरें खानी पड़ीं, एक बार उन्हें एक रेलगाड़ी से धक्का मारकर उतार दिया गया, सड़क की पटरी पर से धकियाकर हटाया गया और यह सब केवल इसलिए कि वे भारतीय थे और उनकी चमड़ी काली थी। फिर भी उनको यह समझ में नहीं आया कि आखिर गोरे लोग 'काले' लोगों से इतनी घृणा और दुर्व्यवहार क्यों करते हैं। आखिर सभी मनुष्य उसी ईश्वर की संतान हैं और ईसाई धर्म तो प्रेम का धर्म है।

एक दिन वे बाल कटाने के लिए एक नाई की दुकान में गए। गोरे नाई ने पूछा : "क्या चाहते हो ?"

"मैं बाल कटवाना चाहता हूँ।" गांधी ने कहा

"खेद है कि मैं तुम्हारे बाल नहीं काट सकता। अगर मैं किसी काले आदमी के बाल काटूँगा तो मेरे सब ग्राहक छूट जाएँगे।"

इस अपमान से गांधी मर्माहत हो उठे। उन्हें लगा कि मन में घुटने या अखबारों में अपीलें छपवाने से काम नहीं चलेगा, उन्हें आत्मनिर्भर बनना चाहिए और अपने काम खुद करना चाहिए। फौरन उन्होंने बाल काटने की मशीन खरीदी और घर जाकर शीशे के सामने अपने बाल खुद काटने शुरू कर दिए। वह दाढ़ी तो खुद बना सकते थे, लेकिन अपने

सिर के बाल काटना टेढ़ा काम था। यह बैरिस्टर का काम तो था ही नहीं। सामने और बगल के बालों को तो उन्होंने जैसे-तैसे छाँट लिया लेकिन पीछे के बाल बिगड़ गए। उनके बाल विचित्र ढंग से कटे देखकर उनके मित्र बहुत हँसे। एक ने मजाक में पूछा : "गांधी ! तुम्हारे बालों को क्या हुआ ? क्या रात में इन्हें चूहे कुतर गए ?" गांधी ने सहज भाव से उत्तर दिया: "नहीं। गोरे नाई ने एक काले आदमी के काले बालों को हाथ लगाने से इन्कार कर दिया, इसलिए मैंने तय किया कि चाहे कितने ही खराब हो जाएँ मैं अपने बाल खुद काटूँगा।"

बाल काटने का गांधी का यह प्रथम प्रयास था। उस समय उनकी अवस्था अट्ठाईस वर्ष की थी। बाद में वह अक्सर बाल काटने की मशीन और कैंची का इस्तेमाल करते रहे। उनके आश्रम में किसी नाई से बाल कटवाने का निषेध था। आश्रमवासी बारी-बारी से एक दूसरे के बाल खुद ही काटते थे। गांधी चाहते थे कि आश्रम के छात्र बड़ी सादगी बरतें। आश्रम में किसी प्रकार के फैशन, बढ़िया वस्त्र या स्वादिष्ट भोजन के लिए कोई जगह नहीं थी। एक दिन रविवार को आश्रम के लड़के जब नहाने जा रहे थे तब गांधी ने उन्हें बुलाया और एक-एक करके सब के बाल खूब छोटे-छोटे काट दिए। लड़कों को इतने छोटे बाल हो जाने का बड़ा अफसोस हुआ। एक बार गांधी ने आश्रम की दो लड़कियों के लंबे बालों को भी काट दिया था।

दक्षिण अफ्रीका की जेलों में कैदियों को कंघे नहीं दिए जाते थे और दो महीने या इससे ज्यादा की सजा पाने वाले हर कैदी का सिर और दाढ़ी मूँछें मूँड़ दी जाती थी। गाधी और उनके साथी जब जेल भेजे गए तो उन्हें इस नियम से छूट दे दी गई। लेकिन गांधी तो जेल के सभी अनुभवों को भोगना चाहते थे। मैं अपने बाल छोटे-छोटे करवाना चाहता हूँ, उनके यह लिखकर देने पर जेल के मुख्य रक्षक ने उन्हें एक मशीन और कैंची दे दी। जेल में गांधी और उनके एक दो साथी प्रतिदिन दो घंटे नाई का काम करते थे।

जब गांधी आगा खाँ महल में बंदी थे तो वहाँ उनके साथ एक आश्रमवासी महिला भी थी। उसके बालों में रूसी पड़ गई थी जिससे वह परेशान थी। एक दिन शामत की मारी वह गांधी से पूछ बैठी : "बापू, मैं अपने बाल काट कर रूसी मारने के लिए कोई दवा लगा लूँ क्या ?" गांधी ने तत्काल कहा : "हाँ, फौरन। कैंची ले आओ।" कैंची लाई गई और उस महिला के लंबे केश क्षण भर में कटकर नीचे गिरने लगे। गांधी उस समय पचहत्तर वर्ष के थे।

स्वदेशी आंदोलन के दौरान गांधी ने विदेशी उस्तरे त्यागकर देशी उस्तरों का इस्तेमाल

शुरू किया। धीरे-धीरे वह इस उस्तरे को ठीक से इस्तेमाल करना सीख गए और फिर तो वह बिना शीशा, साबुन या बुरुश से दाढ़ी बनाने लगे। साबुन और बुरुश का प्रयोग न करने को वह हजामत की कला में बहुत बड़ी प्रगति मानते होंगे क्योंकि उन्होंने एक नाई को यह प्रमाणपत्र दिया था : "मुन्नालाल ने बड़े मनोयोग से मेरी बड़ी अच्छी हजामत बनाई है। उसका उस्तरा देशी है और वह बिना साबुन लगाए हजामत बनाता है।" उनके कुछ अनुयायियों को भी इसका शौक लगा और उन्होंने पाया कि बिना साबुन के दाढ़ी बनाने से झंझट कम होता है।

गांधी जानते थे कि गाँवों में नाई लोग जर्राही भी करते हैं और फोड़े चीरने या काँटा वगैरह निकालने में बड़े निपुण होते हैं। लेकिन उनके गंदे कपड़ों और गंदे औजारों को वह बर्दाश्त नहीं कर पाते थे।

एक बार सेवाग्राम में एक हरिजन कार्यकर्त्ता ने गांधी से कहा : "मैं हजामत बनवाने के लिए वर्धा जाना चाहता हूँ।"

"तुम इस गाँव में हजामत नहीं बनवा सकते ?"

उसने उत्तर दिया : "सवर्ण नाई मेरी हजामत नहीं बनाएगा और यहाँ कोई हरिजन नाई नहीं है।"

"तब फिर मैं यहाँ के नाई से अपनी हजामत कैसे बनवा सकता हूँ।" गांधी ने कहा और उन्होंने भी उस नाई से काम लेना बंद कर दिया। गाँवों में दौरा करते समय उन्हें कभी-कभी स्वयं हजामत बनाने का समय नहीं मिलता था, और कभी-कभी नाई की जरूरत होती थी।

एक बार खादी प्रचार के दौरान उन्होंने इच्छा प्रकट की कि कोई खादी पहनने वाला नाई उनकी हजामत बनाए। ऐसे नाई की तलाश में स्वयंसेवक लोग इधर-उधर भाग-दौड़ करने लगे। गांधी ने स्वयंसेवकों से कहा : "हमें धोबियों और नाइयों को भी स्वदेशी का व्रत लेने को प्रेरित करना होगा।" इसी प्रकार उड़ीसा में एक बार गांधी ने नाई बुलाया। उन्होंने देखा कि एक स्त्री लोखर लिए चली आ रही है। उसके कानों में भारी झुमके, नाक में नथुनी, गले में हँसुली, पैरों में कड़े और हाथों में चूड़ियाँ थीं। गांधी ने कहा : "अच्छा, तो तुम मेरी हजामत बनाओगी ?" उसने मुस्करा कर गर्दन हिलाई और अपना उस्तरा तेज करने लगी। गांधी ने फिर पूछा : "तुम ये भारी गहने क्यों पहने हुए हो ? इनसे तुम्हारी सुंदरता नहीं बढ़ती। ये भद्दे और मैले हैं।" आँखों में आँसू भर कर वह स्त्री बोली : "आप जानते हैं, मैं इन्हें उधार माँग कर लाई हूँ ? आप जैसे बड़े आदमी के सामने

मैं बिना अच्छा गहना, कपड़ा पहने कैसे आ सकती थी ?" गांधी की दाढ़ी और बाल बना चुकने के बाद, उसे जो मेहनताना दिया गया, इसको उसने गांधी के पैरों पर चढ़ा दिया, झुक कर उन्हें प्रणाम किया और चली गई ।

भंगी

राजकोट में गांधी के पिता के घर में ऊका नाम का एक मेहतर सफाई करता था। अगर गांधी कभी उसको छू लेते तो उनकी माँ पुतलीबाई, उनसे नहाने को कहती थीं। गांधी वैसे तो बड़े नम्र और आज्ञाकारी बालक थे, लेकिन माँ की यह बात उनको अच्छी नहीं लगती थी। बारह वर्ष के बालक गांधी अपनी माँ से तर्क करने लगते थे : "ऊका तो गंदगी और कूड़ा साफ करके हमारी सेवा करता है, फिर उसके छूने से मैं गंदा कैसे हो सकता हूँ ? मै आपकी आज्ञा नहीं टालूँगा, लेकिन रामायण में लिखा है कि श्री राम ने गुह को गले लगाया था जो कि चांडाल था। रामायण तो हमें गलत बातें नहीं सिखा सकती।" माँ को इस तर्क का कोई उत्तर नहीं सूझता था।

भंगी का काम गांधी ने दक्षिण अफ्रीका में सीखा। वहाँ उनके मित्र प्रेमवश उन्हें 'भंगी शिरोमणि' कहा करते थे। तीन वर्ष तक वहाँ रहने के बाद वह अपनी पत्नी और लड़कों को लेने के लिए भारत आए। उस समय बंबई प्रेसीडेन्सी में प्लेग फैला हुआ था। राजकोट में भी प्लेग फैलने की आशंका थी। तत्काल गांधी राजकोट में सफाई के लिए काम में जुट गए। घर-घर जाकर उन्होंने संडासों को साफ रखने की जरूरत समझाई। अँधेरे, गंदे, बदबूदार और कीड़ों से भरे हुए संडासों को देखकर वह घबरा उठे। कुछ ऊँचे घरों में संडास थे भी नहीं और नालियों को ही टट्टी-पेशाब करने के लिए इस्तेमाल किया जाता था और वहाँ की दुर्गन्ध असह्य थी। मगर घर में रहने वालों को इसकी कोई परवाह न थी। बड़े लोगों के मुकाबले गरीब अछूतों के घर ज्यादा साफ थे, और उन्होंने सफाई के बारे में गांधी की बात को खुशी से मान लिया। गांधी ने सुझाव दिया कि पेशाब और पाखाने के लिए दो अलग-अलग बाल्टियों का इस्तेमाल किया जाए, और ऐसा करने से सफाई में काफी सुधार हुआ।

राजकोट में गाँधी का परिवार काफी प्रतिष्ठित था। उनके पिता और पितामह राजकोट और आसपास की रियासतों में दीवान रह चुके थे। इन दिनों राज्य के दीवान के बैरिस्टर पुत्र के लिए अपने बाप-दादों के शहर में घर-घर में जाकर वहाँ नाली, पाखानों की

सफाई करना मामूली बात न थी। मगर संकट की घड़ी में गांधी ऐसा साहस दिखाने में कभी नहीं चूके। वह पश्चिम की कई बातों की बुराई करते थे, लेकिन यह बात वह बारंबार कहते थे कि सफाई की ग्रादत मैंने पश्चिम से ही सीखी। उसी प्रकार की सफाई ग्रौर स्वच्छता वह भारत में भी लाना चाहते थे।

दक्षिण अफ्रीका से दूसरी बार भारत ग्राने पर गांधी कलकत्ता में कांग्रेस के अधिवेशन में गए। वह दक्षिण अफ्रीका में रहने वाले भारतीयों की दुर्दशा का हाल कांग्रेस को ग्रौर देश को बताना चाहते थे ग्रौर उनकी सहायता माँगना चाहते थे। कांग्रेस शिविर में सफाई की हालत बहुत ही खराब थी। कुछ प्रतिनिधि तो अपने कमरे के सामने के बरामदे में पाखाना करते थे। गांधी ने यह देखकर तुरंत इसे सुधारने का निश्चय किया। मगर जब उन्होंने सफाई के लिए स्वयंसेवकों से कहा तो वे बोले: "यह हमारा काम नहीं है, यह तो भंगी का काम है।" तब गांधी ने एक झाड़ू माँगी ग्रौर सारी गंदगी स्वयं साफ कर डाली। उस समय वह पश्चिमी ढंग की पोशाक पहने हुए थे। कोट-पैंट धारी व्यक्ति को भंगी का काम करते देखकर स्वयंसेवक-गण बहुत चकित हुए, लेकिन गांधी की मदद के लिए कोई ग्रागे नहीं ग्राया। वर्षों बाद, जब गांधी राष्ट्रीय कांग्रेस के पथ-प्रदर्शक बने तब कांग्रेस शिविरों में स्वयंसेवकों का एक ऐसा दल तैयार होने लगा जो भंगियों का काम करता था। एक अवसर पर तो दो हजार शिक्षक ग्रौर छात्र ऐसे थे, जिन्हें भंगी का काम करने के लिए विशेष रूप से सिखाया गया था। गांधी यह नहीं सह सकते थे कि गंदगी ग्रौर कूड़े-कचरे की सफाई 'ग्रछूत' कहे जाने वाले एक वर्ग पर ही लाद दी जाए। वह छुग्राछूत को मिटा ही देना चाहते थे।

दक्षिण अफ्रीका में गोरे लोग भारतीयों को उनकी गंदी ग्रादतों के कारण, बहुत नफरत की नजर से देखते थे। गांधी वहाँ भारतीयों के घर जाते ग्रौर उनको समझाते थे कि अपने घरों ग्रौर ग्रासपास की जगह को साफ-सुथरा रखें। भाषणों द्वारा ग्रौर अखबारों में लिखकर भी वह लोगों को समझाते थे। डर्बन में गांधी का घर पश्चिमी ढंग का था। गुसलखाने में पानी के निकास के लिए कोई नाली नहीं थी। कमोड ग्रौर पेशाब के बर्तनों का इस्तेमाल किया जाता था। गांधी के साथ रहने वाले उनके कारकून जिस बर्तन में पेशाब करते थे, उसे कभी-कभी गांधी खुद साफ करते थे। उन्होंने अपने लड़कों से भी यह काम कराया। एक बार जिस बर्तन में एक नीची जाति के एक कारकून ने पेशाब किया था, उसे साफ करने को कहने पर कस्तूरबा को बुरा लगा। इस पर गांधी ने उन्हें बहुत डाँटा ग्रौर कहा कि जात-पात का भेद करना हो तो घर से निकल जाएँ। एक बार साबरमती ग्राश्रम में एक 'अछूत' दंपति

को दाखिल कर लेने पर गांधी के समर्थकों ने ही उनका सामाजिक बहिष्कार कर दिया था।

दक्षिण अफ्रीका की जेल में एक बार गांधी ने अपनी मर्जी से संडास साफ करने का काम लिया था। अगली बार जेल अधिकारियों ने उन्हें भंगी का काम सौंप दिया।

दक्षिण अफ्रीका में बीस वर्ष रहने के बाद छयालीस वर्ष की अवस्था में गांधी अपने दल के साथ हमेशा के लिए भारत लौट आए। जिस वर्ष वह लौटे उसी वर्ष हरिद्वार के कुंभ मेले में उन्होंने 'फीनिक्स आश्रम' के लड़कों के साथ भंगियों का काम किया। उसी वर्ष गांधी पूना में सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी (भारत सेवक संघ) के भवन में गए। संघ सदस्यों ने एक सुबह क्या देखा कि गांधी उनके मकानों के संडास साफ कर रहे हैं। उन्हें यह अच्छा नहीं लगा। लेकिन गांधी का विश्वास था कि इस प्रकार के काम करने से हममें स्वराज पाने की योग्यता आती है।

उन्होंने कई बार पूरे भारत का दौरा किया। जहाँ भी वह गए, वहाँ उन्होंने गंदगी देखी। रेलवे स्टेशनों और धर्मशालाओं के पेशाबघरों और संडासों में बड़ी गंदगी और बदबू होती थी। गाँवों की सड़कों का तो बुरा हाल था। उन्होंने एक तीर्थ-स्नान के अवसर पर देखा कि जिस तालाब में लोग डुबकियाँ लगा रहे हैं उसका घाट और पानी बहुत गंदा है, मगर इस बात की ओर लोगों का तनिक भी ध्यान नहीं। नदी के तटों पर लोग खुद गंदगी करते थे। उन्हें यह देखकर बहुत दुख हुआ कि काशी के विश्वनाथ मंदिर के संगमरमर के फर्श में जो सिक्के जड़े हुए थे, उनमें कीच और गंदगी जमी थी। उन्हें समझ में नहीं आया कि ज्यादातर मंदिरों के रास्ते इतने संकरे और कीचड़ तथा फिसलन से भरे क्यों हैं। गांधी को इस पर बहुत दुःख होता था कि यात्री रेलगाड़ी के डिब्बों को गंदा करते हैं। वे कहते थे कि यद्यपि भारत में बहुत कम लोग ऐसे हैं जो जूता खरीद सकें, फिर भी यहाँ सड़कों पर इतनी गंदगी रहती है कि नंगे पैर चलने की बात सोची भी नहीं जा सकती। यहाँ तक कि बंबई जैसे शहर में भी सड़कों पर चलते समय लोग डरते थे कि कहीं ऊपर से कोई उन पर थूक या कूड़ा न फेंक दे।

नगरपालिकाओं के अभिनंदनपत्रों के उत्तर में गांधी अकसर कहते थे : "मैं आपको इस नगर की चौड़ी सड़कों, बढ़िया रोशनी और सुंदर बागों के लिए बधाई देता हूँ। लेकिन जिस नगर में साफ संडास न हों, और जहाँ सड़कें और गलियाँ चौबीसों घंटे साफ न रहती हों वहाँ की नगरपालिका इस काबिल नहीं है कि उसे चलते रहने दिया जाए। नगर-पालिकाओं की सबसे बड़ी समस्या गंदगी है।...क्या आपने कभी सोचा है कि भंगी लोग किस हालत में रहते हैं ?"

जनता से वह कहते थे : "जब तक आप लोग अपने हाथ में झाड़ू और बाल्टी नहीं लेंगे, तब तक आप अपने नगरों को साफ नहीं रख सकते।" एक आदर्श स्कूल को देखने के बाद उन्होंने वहाँ के शिक्षकों से कहा : "आप अपने छात्रों को किताबी पढ़ाई के साथ-साथ, खाना पकाना और भंगी का काम भी सिखा सकें, तभी आपका विद्यालय आदर्श विद्यालय होगा।" छात्रों से उन्होंने कहा : "यदि तुम लोग भंगी का काम खुद ही करोगे तो अपने चारों ओर सफाई रखोगे। विक्टोरिया क्रॉस पाने के लिए जितने साहस की जरूरत है, कुशल भंगी बनने के लिए उससे कम साहस की जरूरत नहीं।"

गांधी के आश्रम के आसपास रहने वाले ग्रामीण अपने मैले को मिट्टी से नहीं ढकते थे। वे कहते थे कि यह तो भंगी का काम है। मैले को देखना भी पाप है, फिर उसे मिट्टी से ढकना तो और भी बुरा काम है। उनको सफाई सिखाने के लिए गांधी महीनों तक खुद बाल्टी और झाड़ू लेकर गाँवों में गए। उनके मित्र और आश्रम में आने वाले अतिथि भी कभी-कभी उनके साथ जाते थे। वे बाल्टियों में कूड़ा और मैला उठा कर लाते और उसे गढ़ों में दबा देते थे।

उनके आश्रम में भंगी का सारा काम आश्रमवासी खुद करते थे। आश्रम में विभिन्न जातियों और धर्म के लोग रहते थे। आश्रम में कहीं गंदगी और कूड़ा नहीं दिखाई पड़ता था। सारा कूड़ा गढ़ों में डालकर मिट्टी से पाट दिया जाता था। सब्जियों के छिलके और खाने की जूठन को खाद बनाने के लिए एक अलग गढ़े में डाला जाता था। मैले को भी गढ़ों में दबा दिया जाता था, और उसकी खाद बनाई जाती थी। इस्तेमाल हुए पानी से बाग की सिंचाई होती थी। आश्रम में मक्खियों और दुर्गन्ध का नाम नहीं था, यद्यपि वहाँ गंदे पानी के निकास के लिए जमीन के नीचे पक्की नालियाँ नहीं थीं। गांधी और उनके साथी बारी-बारी से संडास की सफाई करते थे। गांधी ने आश्रम में बाल्टियों वाले संडास और जमीन में खोदे गए दो हिस्सों वाले ऐसे संडास बनवाए जिनमें मल और मूत्र अलग-अलग गिरता था। गढ़े भर जाने के बाद संडास सरकाकर दूसरी जगह लगा दिए जाते थे। आश्रम में अभ्यागतों को गांधी यह नए ढंग की टट्टी बड़े गर्व से दिखाते थे। अमीर, गरीब, नेता और कार्यकर्ता, भारतीय और विदेशी, सभी को इन्हीं टट्टियों का प्रयोग करना पड़ता था। इस तरह धीरे-धीरे गांधी के कट्टरपंथी साथियों और आश्रम की स्त्रियों के मन में टट्टी-पाखाना साफ करने में जो घृणा थी वह दूर हो गई।

गांधी को सफाई का कोई भी काम करने का अवसर मिलने पर बड़ा आनंद होता था। गांधी की राय में किसी भी देश के लोगों की सफाई की सबसे पक्की कसौटी यह थी कि

उनकी टट्टियाँ साफ हैं या नहीं। छहत्तर वर्ष की आयु में उन्होंने गर्व के साथ कहा था : "मैं जिस टट्टी का इस्तेमाल करता हूँ वह बिल्कुल साफ-स्वच्छ रहती है, वहाँ बदबू का नाम भी नहीं है। मैं उसे खुद साफ करता हूँ।" कई बार अपना परिचय वह भंगी के रूप में देते थे और कहते थे कि मैं भंगी बन कर रहना और मरना चाहता हूँ। कट्टरपंथी हिन्दुओं से वह यहाँ तक कहते थे कि अछूतों के साथ मुझे भी समाज से निकाल दो।

वह भंगियों की बस्तियों में जाते थे और उनका दुख-सुख सुनते थे। गांधी उनको विश्वास दिलाते थे कि भंगी का काम किसी तरह नीचा या अपमानजनक नहीं है और उनको समझाते थे कि शराब पीना और मरे जानवरों का मांस खाना छोड़ दो। गांधी भंगियों की हड़ताल का भी समर्थन नहीं करते थे और कहते थे कि किसी भंगी को एक दिन के लिए भी अपना काम नहीं छोड़ना चाहिए।

'हरिजन' में एक लेख में उन्होंने एक आदर्श भंगी की पहचान इस प्रकार बताई है : "उसे मालूम होना चाहिए कि सही ढंग की टट्टी किस तरह बनाई जाती है और उसको सही ढंग से कैसे साफ किया जाता है उसे यह भी मालूम होना चाहिए कि मैले की बदबू का किस प्रकार नाश किया जाए और मल के कीटाणुओं को मारने के लिए वह किस चीज का इस्तेमाल करे। इसी प्रकार उसे मालूम होना चाहिए कि मल-मूत्र से खाद किस प्रकार बनाई जाती है।" पेट के खातिर मजबूरी में किए गए भंगी के काम को गांधी समाज सेवा का रूप देना चाहते थे।

एक बार गांधी खादी-प्रचार के लिए दौरा कर रहे थे। एक जगह उन्हें जिस सभा में बोलना था, उसमें भंगियों को नहीं आने दिया गया। गांधी को जब यह बात मालूम हुई तो उन्होंने सभा के संयोजकों से कहा : "आप लोग अपनी थैलियाँ और अपने अभिनंदनपत्र अपने पास रखिए। मैं भंगियों के पास जाकर भाषण दूँगा। जिसे मेरी बात सुननी हो वहाँ आ जाएँ।"

अपनी मृत्यु से दो वर्ष पहले गांधी बंबई और दिल्ली में भंगी बस्ती में ठहरे थे। वह उनके साथ घर में रहना और उनका भोजन करना चाहते थे। लेकिन इस उम्र में वह प्रयोग करने के काबिल नहीं रह गए थे। इसके अलावा महात्मा होने के कारण लोग उनको साधारण ढंग से रहने नहीं देते थे। इसलिए जब वे किसी भंगी बस्ती में जाते, तो उसे विशेषरूप से साफ-सुथरा रखने का प्रबंध कर दिया जाता।

एक बार गांधी बड़े लाट साहब से एक महत्त्वपूर्ण बातचीत के लिए शिमला गए। वहाँ उन्होंने अपने एक साथी को भंगियों की बस्ती देखने के लिए भेजा। जब उसने आकर

बताया कि भंगी लोग जैसे घरों में रहते हैं वे तो जानवरों के रहने योग्य भी नहीं हैं, तो उन्हें बड़ी तकलीफ हुई और वह बोले : "आज हमने भंगियों को जानवरों के बराबर बना दिया है। वह इंसान के न करने योग्य काम भी करते हैं, फिर भी उन्हें चंद टुकड़े ही मिल पाते हैं। किसी भंगी को पाखाने की दीवार की छाया में, गंदगी और मलमूत्र के बीच, सहमते हुए जूठन खाते देखिए, तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं।" किसी भंगी को अपने सर पर मैले से भरा टोकरा ले जाते देखकर गांधी के मन को बहुत ठेस पहुँचती थी। उनका कहना था कि ठीक औजारों के द्वारा सफाई का काम अच्छी तरह किया जा सकता है। सफाई का काम भी एक कला है और वह अपने को बिना गंदगी में साने यह काम बखूबी करते थे।

एक बार एक विदेशी ने गांधी से पूछा : "यदि आपको एक दिन के लिए भारत का बड़ा लाट बना दिया जाए तो आप क्या करेंगे ?"

गांधी ने कहा : "राज भवन के पास भंगियों की जो गंदी बस्ती है, मैं उसे साफ करूँगा।"

"मान लीजिए कि आपको एक दिन और उस पद पर रहने दिया जाए, तब..."

"दूसरे दिन भी वही काम करूँगा।"

मोची

गांधी जब तिरेसठ साल के थे तब वह यरवदा जेल में वल्लभभाई पटेल के साथ बंदी थे। पटेल को एक जोड़ी चप्पलों की जरूरत थी, लेकिन उस वर्ष जेल में कोई अच्छा मोची नहीं था। गांधी पटेल से बोले : "अगर मुझे अच्छा चमड़ा मिल जाए तो मैं तुम्हारे लिए चप्पल बना सकता हूँ। बहुत दिनों पहले सीखी यह कला मुझे अब भी याद है। मेरी कारीगरी का एक नमूना सोदपुर के खादी प्रतिष्ठान संग्रहालय में देखा जा सकता है। मैंने चप्पलों की वह जोड़ी '...' के लिए भेजी थी। पर उन सज्जन ने कहा कि: "इन चप्पलों को मैं सिर पर धारण कर सकता हूँ, पैरों में नहीं। मैंने टालस्टाय बाड़ी पर बहुत-सी चप्पलें बनाई थीं।"

चप्पल बनाने की कला उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में अपने जर्मन मित्र कलेनबाख से सीखी थी। गांधी ने अपने साथ के और लोगों को भी जूता बनाना सिखाया और उनके शिष्य जूता बनाने में अपने गुरू को भी मात कर देने लगे। उन लोगों के बनाए जूते बाजार में बेचे जाते थे। उस जमाने में गांधी ने पैंट के साथ चप्पल पहनने का फैशन ही चला दिया। गरम देशों में चप्पलें जूतों की अपेक्षा ज्यादा आरामदेह होती हैं और जाड़ों में उन्हें मोजों पर भी पहना जा सकता है।

एक बार गांधी से सलाह-मशविरा करने के लिए वल्लभभाई पटेल, जवाहरलाल नेहरू तथा अन्य नेता-गण सेवाग्राम गए। वहाँ उन्होंने देखा कि गांधी कुछ प्रशिक्षार्थियों को जूता बनाना सिखा रहे हैं! "यह पट्टी यहाँ होनी चाहिए, यह टंकाई यहाँ पर इस प्रकार की जानी चाहिए, तल्ले पर जहाँ सबसे अधिक दबाव पड़ता है, चमड़े की आड़ी-तिरछी पट्टियाँ लगानी चाहिए।" इस पर एक नेता ने गांधी को उलाहना दिया कि ये शिक्षार्थी लोग हमारा समय ले रहे हैं। गांधी ने कहा: "चाहो तो अच्छी चप्पलें किस प्रकार बनाई जाती हैं तुम भी सीख लो।"

एक दिन गांधी ने अपने साथियों के साथ गाँव के चमारों को मरे हुए बैल की खाल उतारते देखा। मरे जानवर की खाल को गाँव के बने एक मामूली छुरे से बिना कोई नुकसान पहुँचाए चीर कर वे किस निपुणता के साथ उतारते हैं, इसे देखकर गांधी बहुत प्रभावित

हुए। गांधी को बताया गया कि गाँव का चमार जितनी सफाई के साथ खाल उतारने का काम करता है उतनी सफाई डाक्टर लोग भी चीर-फाड़ में नहीं दिखाते। गांधी तो मानते थे कि मनुष्य शरीर की चीर-फाड़ करने वाला डाक्टर भी वही काम करता है, जो चर्मकार या मोची। लेकिन जहाँ डाक्टर का धंधा सम्मानजनक माना जाता है वहाँ एक भंगी या चमार के काम को घृणा की दृष्टि से देखा जाता है और उन्हें अछूत माना जाता है।

गांधी को जूते की सिलाई सीख कर ही संतोष नहीं हुआ। वह चमड़ा कमाने का काम भी सीखना चाहते थे। दुनिया भर में इतने सारे लोग चमड़े के जूते पहनते हैं और यह चमड़ा ज्यादातर स्वस्थ पशुओं—गायों, बैलों, भेड़ों और बकरियों—को मार कर ही प्राप्त किया जाता है। गांधी अहिंसा में विश्वास करते थे। उन्होंने डाक्टर के आग्रह करने पर भी अपनी मरणासन्न पत्नी और बीमार बेटे को मांस का शोरवा या अंडा देना स्वीकार नहीं किया था। फिर भला वह मुलायम चमकदार जूते के लिए पशुओं की हत्या को कैसे पसंद करते। लेकिन फिर चमड़ा कहाँ से आए।

उन्होंने केवल उन्हीं पशुओं की खाल का उपयोग करने का निश्चय किया जिनकी स्वाभाविक मृत्यु हुई हो। मुर्दा पशुओं की खाल से बनी चमड़े की चप्पलें 'अहिंसक' चप्पल कहलाईं। मुर्दा पशुओं की खाल से चमड़ा तैयार करने की अपेक्षा मारे गए पशुओं की खाल से चमड़ा तैयार करना ज्यादा आसान था, और चमड़ा बनाने वाले कारखानों में अहिंसक चमड़ा तो मिलता नहीं था। इसलिए गांधी के लिए चमड़ा बनाने की विधि सीखना जरूरी हो गया।

उन्होंने पता लगाया कि भारत से नौ करोड़ रुपए के मूल्य की कच्ची खाल का प्रति वर्ष निर्यात किया जाता है और विदेशों में वैज्ञानिक विधि से साफ होने के बाद उसी चमड़े से तैयार करोड़ों रुपए का माल भारत में आयात किया जाता है। इससे न केवल देश को आर्थिक नुकसान होता था, बल्कि हमारे चमड़ा कमाने और उससे बढ़िया सामान तैयार करने में कारीगरों की सूझ-बूझ को फलने-फूलने का मौका भी नहीं मिल पाता था। कत्तिनों और जुलाहों की तरह सैकड़ों ही चमड़ा कमाने वालों और चमड़े का सामान बनाने वालों की रोजी मारी जाती थी। गांधी की समझ में नहीं आता था कि आखिर चमड़ा कमाने का धंधा नीचा क्यों समझा जाता है। प्राचीन काल में ऐसा कभी नहीं रहा। गांधी ने देखा कि लाखों चमार यह काम करते हैं और उन्हें पीढ़ी-दर-पीढ़ी 'अछूत' समझा जाता है। सवर्ण लोग उन्हें नीची निगाह से देखते हैं और चमार लोग कला, शिक्षा, स्वच्छता और सम्मान से रहित बहुत ही गिरा हुआ जीवन बिताते हैं। चमार, भंगी और मोची लोग उपयोगी काम करते हैं, समाज

की सेवा करते हैं, फिर भी जात-पात के भेदभाव के कारण, वे अछूत समझे जाते हैं और जानवरों से भी बदतर जीवन बिताते हैं। अन्य देशों में यदि कोई आदमी चमार या मोची का पेशा अपनाता है तो उसे 'अछूत' नहीं समझा जाता।

चमड़ा कमाने के इस ग्रामोद्योग को फिर से चालू करने के लिए गांधी ने सार्वजनिक निवेदन निकाले। गाँवों में चमड़ा कमाने की कला बड़ी तेजी से खत्म होती जा रही थी। उसे फिर से चालू करने के लिए गांधी ने वैज्ञानिकों से भी सहायता माँगी। गांधी ने सोचा कि चमड़ा कमाने का सुधरा हुआ तरीका अपनाने से चमारों में मृत जानवर का मांस खाने का रिवाज खत्म हो जाएगा। कहीं तो यह हाल था कि जब कभी किसी चमार के घर खाल निकालने के लिए मरा हुआ जानवर लाया जाता तो सारा घर खुशी से नाचने लगता क्योंकि उस दिन मरे हुए जानवर का मांस जी भर कर खाने को जो मिलेगा। बच्चे खुशी के मारे मरे जानवर के आसपास उछलने-कूदने लगते और जब जानवर की खाल निकाली जाती तब वे उसकी हड्डियों और गोश्त के टुकड़े उठा-उठा कर एक दूसरे पर फेंकते और इस प्रकार खेलते। गांधी को यह दृश्य बड़ा वीभत्स लगता था।

उन्होंने चमड़ा कमाने वाले हरिजनों से कहा : "आप लोग अगर मुर्दा मांस खाना नहीं छोड़ेंगे तो भले ही मैं आपको स्पर्श करूँ, लेकिन कट्टरपंथी लोग आपके संसर्ग से दूर भागेंगे। यह गंदी आदत है।" चमारों ने उत्तर दिया : "अगर हमें मुर्दा जानवर उठाने का काम करना है, उसकी खाल उतारनी है तो आप यह कैसे कहते हैं कि हम मुर्दा जानवर का मांस खाना बंद कर दें।" गांधी ने कहा : "यह जरूरी नहीं कि आप खाल उतारें तो मांस भी खाएँ। आप किसी दिन मुझे चमड़ा कमाने का काम करते देखेंगे, लेकिन आप मुझे मुर्दा जानवर का मांस खाते नहीं पाएँगे। मैं अपने अनुभव से कह सकता हूँ कि भंगी और चमार का काम बिल्कुल सफाई से किया जा सकता है।"

गांधी ने साबरमती और वर्धा के आश्रमों में चमड़ा कमाने का विभाग खोला। इसकी शुरुआत बहुत छोटे पैमाने पर हुई, लेकिन बाद में यह बढ़ गया और चमड़ा रखने के लिए एक पक्की इमारत बनाई गई। गांधी ने इस इमारत के लिए पचास हजार रुपए इकट्ठा किए और यहाँ कुशल चमारों के देख-रेख में आश्रम के लड़के चमड़ा कमाते थे। यहाँ बनी चमड़े की वस्तुएँ बाजार में बेची जाती थीं। यहाँ केवल मरे पशुओं की खालों का उपयोग किया जाता था।

गांधी कलकत्ता की नेशनल टेनरी को देखने गए और वहाँ क्रोम चमड़ा तैयार करने की विधि को बड़ी दिलचस्पी के साथ देखा। उन्होंने देखा कि किस प्रकार गायों की खाल पर रसायन लगाकर बाल निकाल लेते हैं और चमड़े को रंगा

जाता है। गाँवों में चमड़ा कमाने की विधि को सुधारने के लिए रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शांति-निकेतन में जो खोज की जा रही थी उसकी भी गांधी बराबर खबर रखते थे। गांधी यह नहीं चाहते थे कि गाँवों में चमड़ा कमाने की जो विधि पुराने जमाने से चली आ रही है उसे बिल्कुल छोड़ दिया जाए और गाँव के चमड़ा कमाने के और अन्य धंधों को गाँवों से हटाकर शहरों में ले जाया जाए। क्योंकि इससे तो गाँवों के धंधे बिलकुल बन्द हो जाते हैं और गाँव वालों को अपनी दस्तकारी का उपयोग करने का जो थोड़ा-बहुत मौका था वह भी खतम हो जाता। इस समय गाँव में जब कोई जानवर मरता है तो उसे गाँव का चमार घसीटते हुए गाँव के बाहर ले जाता है जहाँ वह उसकी खाल उतारता है। इस प्रकार घसीटने से जानवर की खाल खराब हो जाती है और उस खाल से चमड़े का मूल्य कम हो जाता है। गांधी कहते थे कि मुर्दा जानवर को घसीटने के बजाय उठाकर ले जाया जाए। गाँव के चमार यह भी नहीं जानते थे कि खाल निकालने के बाद मुर्दा पशु की हड्डियों का क्या किया जाए। वह उन्हें बेकार समझ कर कुत्तों को खाने के लिए फेंक देते थे। इससे उसे आर्थिक हानि होती थी। विदेशों में पशुओं की हड्डियों से मूंठ और बटन आदि बनाए जाते हैं और फिर उन्हें भारत तथा अन्य देशों को भेजा जाता है। इसके अलावा हड्डियों के चूरे की खाद भी बहुत अच्छी होती है।

गांधी चमारों की झोंपड़ियों में गए, उनसे मिले-जुले और बातचीत की। चमारों को गांधी में बहुत विश्वास था। वे उनको अपना मित्र और हितैषी मानते थे। चमारों की बस्ती में जाने पर गांधी से चमारों ने पीने के पानी की कठिनाई का उल्लेख किया। उन्होंने बताया कि वे सार्वजनिक कुओं से पानी नहीं भर सकते, मंदिरों में नहीं जा सकते, गाँव में नहीं जा सकते और गाँव या शहर के बाहर रहने को मजबूर हैं। गांधी इन बातों को सुनकर बहुत दुखी और शर्मिन्दा हुए। गांधी खैरात को अच्छा नहीं मानते थे। वह चाहते थे कि वे लोग अपने पैरों पर खड़े हों, स्वावलंबी बनें। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की भाँति ही गांधी का भी यह कहना था कि जब से भारत में शारीरिक श्रम को नीची निगाह से देखा जाने लगा, तब से देश का पतन होने लगा और ऐसा एक दिन आने वाला है जब अपने भाइयों को मानव अधिकारों से वंचित करने वालों को अपने अन्याय और क्रूरता के लिए जवाब देना पड़ेगा।

गांधी को कुछ ऐसे लगन वाले कार्यकर्ताओं की आवश्यकता थी जो चमारों को उनकी मेहनत की ठीक मजदूरी दिलाएँ, उनकी शिक्षा और चिकित्सा का प्रबंध करें, उनको पढ़ाने के लिए रात्रि-पाठशालाएँ चलाएँ, उनके बच्चों को खेल खिलाएँ और घुमाएँ-फिराएँ। गांधी ने खुद चमारों की बस्ती में रात्रि-पाठशालाएँ खोलीं और हरिजन-सेवा का कार्य शुरू किया।

गांधी के इन प्रयत्नों के फलस्वरूप चमारों ने भी गांधी के कहने पर चलने का निश्चय किया। कुछ ने वचन दिया कि वे केवल मरे हुए जानवरों के चमड़े की ही चीजें बनाएँगे, शराब और मुर्दा मांस छोड़ देंगे। एक बार गांधी पुरानी फटी चप्पल पहने चमारों की एक सभा में गए। उस समय उनके पास चप्पलों की कोई दूसरी जोड़ी नहीं थी। गांधी की चप्पलों की इस हालत को देखकर दो चमारों ने मिलकर मृत जानवर के चमड़े की चप्पल की एक जोड़ी तैयार करके उन्हें भेंट की।

दक्षिण अफ्रीका में जिन जनरल स्मट्स ने गांधी को जेल में बंद कराया था उन्हीं के लिए गांधी ने हाथों से बनी हुई एक जोड़ी चप्पल बनवा कर उन्हें भेंट की थी। बाद में गांधी की सत्तरवीं वर्षगाँठ पर जनरल स्मट्स ने संदेश में लिखा था : "जेल में उन्होंने मेरे लिये एक जोड़ी चप्पलें बनवाके भेजी थीं। मैंने उन्हें कई सालों तक पहना, यद्यपि मुझे लगता है कि मैं उनकी बराबरी करने के लायक (योग्य) नहीं हूँ।"

नौकर

आश्रम मे गांधी कई ऐसे काम भी करते थे जिन्हें आमतौर पर नौकर-चाकर करते हैं। जिस जमाने में वह बैरिस्टरी से हजारों रुपए कमाते थे, उस समय भी वह प्रतिदिन सुबह अपने हाथ से चक्की पर आटा पीसा करते थे। चक्की चलाने में कस्तूरबा और उनके लड़के भी हाथ बँटाते थे। इस प्रकार घर में रोटी बनाने के लिए महीन या मोटा आटा वे खुद पीस लेते थे। साबरमती आश्रम में भी गांधी ने पिसाई का काम जारी रखा। वह चक्की को ठीक करने में कभी-कभी घंटों मेहनत करते थे। एक बार एक कार्यकर्ता ने कहा कि आश्रम में आटा कम पड़ गया है। आटा पिसवाने में हाथ बँटाने के लिए गांधी फौरन उठ कर खड़े हो गए। गेहूँ पीसने से पहले उसे बीनकर साफ करने पर वह जोर देते थे। कपनी धारी इस महान व्यक्ति को अनाज बीनते देखकर उनसे मिलने वाले लोग हैरत में पड़ जाते थे। बाहरी लोगों के सामने शारीरिक मेहनत का काम करते गांधी को शरम नहीं लगती थी। एक बार उनके पास कालेज के कोई छात्र मिलने आए। उनको अंग्रेजी भाषा के अपने ज्ञान का बड़ा गर्व था। गांधी से बातचीत के अंत में वह बोले : "बापू, यदि मैं आपकी कोई सेवा कर सकूँ तो कृपया मुझे अवश्य बताएँ।" उन्हें आशा थी कि बापू उन्हें कुछ लिखने-पढ़ने का काम देंगे। गांधी ने उनके मन की बात ताड़ ली और बोले : "अगर आपके पास समय हो, तो इस थाली के गेहूँ बीन डालिए।" आगंतुक बड़ी मुश्किल में पड़ गए, लेकिन अब तो कोई चारा नहीं था। एक घंटे तक गेहूँ बीनने के बाद वह थक गए और गांधी से विदा माँग कर चल दिए।

कुछ वर्षों तक गांधी ने आश्रम के भंडार का काम सम्हालने में मदद दी। सवेरे की प्रार्थना के बाद वे रसोईघर में जाकर सब्जियाँ छीलते थे। रसोईघर या भंडारे में अगर वह कहीं गंदगी या मकड़ी का जाला देख पाते थे तो अपने साथियों को आड़े हाथों लेते। उन्हें सब्जी, फल और अनाज के पौष्टिक गुणों का ज्ञान था। एक बार एक आश्रमवासी ने बिना धोए आलू काट दिए। गांधी ने उसे समझाया कि आलू और नींबू को बिना धोए नहीं काटना चाहिए। एक बार एक आश्रमवासी को कुछ ऐसे केले दिए गए जिसके छिलके

पर काले चक्ते पड़ गए थे। उसने बहुत बुरा माना। तब गांधी ने उसे समझाया कि ये जल्दी पच जाते हैं और तुम्हें खासतौर पर इसलिए दिए गए हैं कि तुम्हारा हाजमा कमजोर है। गांधी आश्रमवासियों को अक्सर स्वयं ही भोजन परोसते थे। इस कारण वे बेचारे बेस्वाद उबली हुई चीजों के विरुद्ध कुछ कह भी नहीं पाते थे। दक्षिण अफ्रीका की एक जेल में वे सैकड़ों कैदियों को दिन में दो बार भोजन परोसने का कार्य कर भी चुके थे।

आश्रम का एक नियम यह था कि सब लोग अपने बर्तन खुद साफ करें। रसोई के बर्तन बारी-बारी से कुछ लोग दल बाँध कर धोते थे। एक दिन गांधी ने बड़े-बड़े पतीलों को खुद साफ करने का काम अपने ऊपर लिया। इन पतीलों की पेंदी में खूब कालिख लगी थी। राख भरे हाथों से वह एक पतीले को खूब जोर-जोर से रगड़ने में लगे हुए थे कि तभी कस्तूरबा वहाँ आ गई। उन्होंने पतीले को पकड़ लिया और बोली : "यह काम आपका नहीं है। इसे करने को और बहुत-से लोग हैं।" गांधी को लगा कि उनकी बात मान लेने में ही बुद्धिमानी है और वह चुपचाप कस्तूरबा को उन बर्तनों की सफाई सौंप कर चले आए। बर्तन बिल्कुल एकदम चमकते न हों तब तक गांधी को संतोष नहीं होता था। जब तक एक बार जेल में उनको जो मददगार दिया गया उसके काम से असंतुष्ट होकर उन्होंने बताया कि वह खुद कैसे लोहे के बर्तनों को भी माँज कर चाँदी-सा चमका सकते थे।

जब आश्रम का निर्माण हो रहा था उस समय वहाँ आने वाले कुछ मेहमानों को तंबुओं में सोना पड़ता था। एक नवागत को पता नहीं था कि अपना बिस्तर कहाँ रखना चाहिए, इसलिए उसने बिस्तर को लपेट कर रख दिया और यह पता लगाने गया कि उसे कहाँ रखना है। लौटते समय उसने देखा कि गांधी खुद उसका बिस्तर कंधे पर उठाए रखने चले जा रहे हैं।

आश्रम के लिए बाहर बने कुएँ से पानी खींचने का काम भी वह रोज करते थे। एक दिन गांधी कुछ अस्वस्थ थे और चक्की पर आटा पीसने के काम में हिस्सा बँटा चुके थे। उनके एक साथी ने उन्हें थकावट से बचाने के लिए अन्य आश्रमवासियों की सहायता से सभी बड़े-छोटे बर्तनों में पानी भर डाला। गांधी को यह बात पसंद नहीं आई, मन में कुछ ठेस भी लगी। उन्होंने बच्चों का नहाने का एक टब उठा लिया और कुएँ से उसमें पानी भर कर टब को सर पर उठाकर आश्रम में ले आए। बेचारे कार्यकर्ता को बहुत पछतावा हुआ।

शरीर से जब तक बिल्कुल लाचारी न हो तब तक गांधी को यह बात बिल्कुल पसंद नहीं थी कि महात्मा या बूढ़े होने के कारण उनको अपने हिस्से का दैनिक शारीरिक श्रम न करना पड़े। हर प्रकार का काम करने की उनमें अद्भुत क्षमता और शक्ति थी।

वह थकान का नाम भी नहीं जानते थे। दक्षिण अफ्रीका में बोअर-युद्ध के दौरान उन्होंने घायलों को स्ट्रेचर पर लाद कर एक-एक दिन में पच्चीस-पच्चीस मील तक ढोया था। वह मीलों पैदल चल सकते थे। दक्षिण अफ्रीका में जब वह टाल्स्टाय बाड़ी में रहते थे तब पास के शहर में कोई काम होने पर दिन में अकसर बयालीस मील तक पैदल चलते थे। इसके लिए वह घर में बना कुछ नाश्ता साथ लेकर सुबह दो बजे ही निकल पड़ते थे, शहर में खरीददारी करते और शाम होते-होते वापस फार्म पर लौट आते थे। उनके अन्य साथी भी उनके इस उदाहरण का खुशी-खुशी अनुकरण करते थे।

एक बार किसी तालाब की भराई का काम चल रहा था जिसमें गांधी के साथी लगे हुए थे। एक सुबह काम खत्म करके वे लोग फावड़े, कुदाल और टोकरियाँ लिए जब वापस लौटे तो देखते हैं कि गांधी ने उनके लिए तश्तरियों में नाश्ते के लिए फल आदि तैयार करके रखे हैं। एक साथी ने पूछा : "आपने हम लोगों के लिए यह सब कष्ट क्यों किया ? क्या यह उचित है कि हम आपसे सेवा कराएँ ?" गांधी ने मुस्करा कर उत्तर दिया : "क्यों नहीं। मै जानता था कि तुम लोग थके-माँदे लौटोगे। तुम्हारा नाश्ता तैयार करने के लिए मेरे पास खाली समय था।"

दक्षिण अफ्रीका में रहने वाले भारतीयों के जाने-माने नेता के रूप में गांधी भारतीय प्रवासियों की माँगों को ब्रिटिश सरकार के सामने रखने के लिए एक बार लंदन गए। वहाँ उन्हें भारतीय छात्रों ने एक शाकाहारी भोज में निमंत्रित किया। छात्रों ने इस अवसर के लिए स्वयं ही शाकाहारी भोजन तैयार करने का निश्चय किया था। तीसरे पहर दो बजे एक दुबला-पतला और छरहरा आदमी आकर उनमें शामिल हो गया और तश्तरियाँ धोने, सब्जी साफ करने और अन्य छुट-पुट काम करने में उनकी मदद करने लगा। बाद में छात्रों का नेता वहाँ आया तो क्या देखता है कि वह दुबला-पतला आदमी और कोई नहीं, उस शाम को भोज में निमंत्रित उनके सम्मानित अतिथि गांधी थे।

गांधी दूसरों से काम लेने में बहुत सख्त थे, लेकिन अपने लिए दूसरों से काम कराना उन्हें नापसंद था। एक बार एक राजनीतिक सम्मेलन से गांधी जब अपने डेरे पर लौटे तो रात हो गई थी। सोने से पहले वह अपने कमरे का फर्श बुहार रहे थे। उस समय रात के दस बजे थे। एक कार्यकर्ता ने दौड़कर गांधी के हाथ से बुहारी ले ली।

जब गांधी गाँवों का दौरा कर रहे होते, उस समय रात को यदि लिखते समय लालटेन का तेल खत्म हो जाता तो वह चंद्रमा की रोशनी में ही पत्र पूरा कर लेना ज्यादा पसंद करते थे, लेकिन सोते हुए अपने किसी थके हुए साथी को नहीं जगाते थे। नोआखाली

पद-यात्रा के समय गांधी ने अपने शिविर में केवल दो आदमियों को ही रहने की अनुमति दी। इन दोनों को यह नहीं मालूम था कि खाखरा कैसे बनाया जाता है। इस पर गांधी स्वयं रसोई में जा बैठे और निपुण रसोइए की तरह उन्होंने खाखरा बनाने की विधि बताई। उस समय गांधी की अवस्था अठहत्तर वर्ष की थी।

गांधी को बच्चों से बहुत प्रेम था। अपने बच्चों के जन्म के दो माह बाद उन्होंने कभी किसी दाई को बच्चे की देखभाल के लिए नहीं रखा। वे मानते थे कि बच्चे के विकास के लिए माँ-बाप का प्यार और उनकी देखभाल अनिवार्य है।

वे माँ की तरह बच्चों की देखभाल कर सकते थे, खिला-पिला और बहला सकते थे। एक बार दक्षिण अफ्रीका में जेल से छूटने के बाद घर लौटने पर उन्होंने देखा कि उनके मित्र की पत्नी श्रीमती पोलक बहुत ही दुबली और कमज़ोर हो गई हैं। उनका बच्चा उनका दूध पीना छोड़ता नहीं था और वह उसकी दूध छुड़ाने की कोशिश कर रही थीं। बच्चा उन्हें चैन नहीं लेने देता था और रो-रोकर उन्हें जगाए रखता था। गांधी जिस दिन लौटे उसी रात से उन्होंने बच्चे की देखभाल का काम अपने हाथों में ले लिया। सारे दिन बड़ी मेहनत करने, सभाओं में भाषण देने के बाद, चार मील पैदल चलकर गांधी कभी-कभी रात को एक बजे घर पहुँचते थे, और बच्चे को श्रीमती पोलक के बिस्तर पर से उठाकर अपने बिस्तर पर लिटा लेते थे। वह चारपाई के पास एक बर्तन में पानी भर कर रख लेते ताकि यदि बच्चे को प्यास लगे तो उसे पिला दें, लेकिन इसकी जरूरत ही नहीं पड़ती थी। बच्चा कभी नहीं रोता और उनकी चारपाई पर रात में आराम से सोता रहता था। एक पखवाड़े तक माँ से अलग सुलाने के बाद, बच्चे ने माँ का दूध छोड़ दिया।

गांधी अपने से बड़ों का बड़ा आदर करते थे। दक्षिण अफ्रीका में गोखले, गांधी के साथ ठहरे हुए थे। उस समय गांधी ने उनके दुपट्टे पर इस्त्री की। वह उनका बिस्तर ठीक करते थे, उनको भोजन परोसते थे और उनके पैर दबाने को भी तैयार रहते थे। गोखले बहुत मना करते थे लेकिन गांधी नहीं मानते थे। महात्मा कहलाने से बहुत पहले एक बार दक्षिण अफ्रीका से भारत आने पर गांधी कांग्रेस के अधिवेशन में गए। वहाँ उन्होंने गंदे पाखाने साफ किए और बाद में उन्होंने एक बड़े कांग्रेसी नेता से पूछा : "मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ?" नेता ने कहा : "मेरे पास बहुत से पत्र इकट्ठे हो गए हैं जिनका जवाब देना है। मेरे पास कोई कारकुन नहीं है जिसे यह काम दूँ। क्या तुम यह काम करने को तैयार हो ?" गांधी ने कहा : "जरूर, मैं ऐसा कोई भी काम करने को तैयार हूँ जो मेरी सामर्थ्य से बाहर न हो।" यह काम उन्होंने थोड़े ही समय में समाप्त कर डाला और इसके बाद उन्होंने उन नेता

की कमीज के बटन आदि लगाने और उनकी अन्य सेवा का काम खुशी से किया।

जब कभी आश्रम में किसी सहायक को रखने की आवश्यकता होती थी, तब गांधी किसी हरिजन को रखने का आग्रह करते थे। उनका कहना था : "नौकरों को हमें वेतनभोगी मजदूर नहीं, अपने भाई के समान मानना चाहिए। इसमें कुछ कठिनाई हो सकती है, कुछ चोरियाँ हो सकती हैं, फिर भी हमारी कोशिश सर्वथा निष्फल नहीं जाएगी।"

उन्हें यह मालूम ही न था कि किसी को नौकर की भाँति कैसे रखे। एक बार भारत की जेल में, उनके साथी कई कैदियों को उनकी सेवा-टहल का काम सौंपा गया। एक आदमी उनके फल धोता या काटता, दूसरा बकरियों को दुहता, तीसरा उनके निजी नौकर की तरह काम करता और चौथा उनके पाखाने की सफाई करता था। एक ब्राह्मण कैदी उनके बर्तन धोता था और दो गोरे यूरोपियन प्रतिदिन उनकी चारपाई बाहर निकालते थे।

गांधी ने देखा कि इंग्लैंड में ऊँचे घरानों में घरेलू नौकरों को परिवार का आदमी माना जाता था। एक बार एक अंग्रेज के घर से बिदा लेते समय उन्हें यह देखकर खुशी हुई कि घरेलू नौकरों का उनसे परिचय नौकरों की तरह नहीं बल्कि परिवार के सदस्य के समान कराया गया।

एक बार एक भारतीय सज्जन के यहाँ काफी दिनों तक ठहरने के बाद गांधी जब चलने लगे तब उस घर के नौकरों से उन्होंने विदा ली और कहा : "मै कभी किसी को अपना नौकर नहीं समझता, उसे भाई या बहन ही माना है और आप लोगों को भी मैं अपना भाई समझता हूँ। आपने मेरी जो सेवा की उसका प्रतिदान देने की सामर्थ्य मुझमें नहीं है, लेकिन ईश्वर आपको इसका पूरा फल देंगे।"

रसोइया

महादेव देसाई ने एक बार गांधी से पूछा : बापूजी, फीनिक्स आश्रम स्थापित करने से पहले क्या आपके पास कोई रसोइया था ?" गांधी ने जवाब दिया: "नहीं, मैंने बहुत पहले ही उसे छुड़ा दिया था। हमारे पास एक बड़ा अच्छा रसोइया था, लेकिन उसने कहा कि मैं बिना मिर्च-मसाले के भोजन नहीं पका सकता । मैंने उसे तुरंत छुट्टी दे दी और फिर दुबारा कभी रसोइया नहीं रखा।" यह उस समय की बात है जब गांधी पैंतीस वर्ष के थे ।

गांधी ने अठारह वर्ष की उम्र में पहली बार अपना भोजन बनाने की कोशिश की, तब वह इंग्लैंड में पढ़ते थे। वह कट्टर शाकाहारी थे । वहाँ उन्हें सामान्यत: डबलरोटी, मक्खन और मुरब्बा तथा बिना तली हुई उबली सब्जियाँ मिलती थीं। गांधी अपनी माँ के हाथ का बना स्वादिष्ट मसालेदार भोजन के आदी थे, इसलिए उन्हें ऐसा खाना बिल्कुल फीका-फीका लगता था ।

शाकाहारी होटलों में कुछ महीने भोजन करने के बाद गांधी ने मितव्ययिता से रहने का निश्चय किया । उन्होंने एक कमरा किराए पर ले लिया और वहाँ स्टोव्ह पर अपना नाश्ता और रात का भोजन स्वयं बनाने लगे। खाना पकाने में उन्हें मुश्किल से बीस मिनट लगते थे और उस पर सिर्फ बारह आने खर्चा बैठता था ।

कुछ समय बाद गांधी ने साल्ट की लिखी पुस्तक 'प्ली फार वेजिटेरियनिज्म' पढ़ी और वे लंदन शाकाहारी सभा के संपर्क में आए, तब उन्होंने अपने भोजन में कई परिवर्तन किए।

बैरिस्टरी पास करके भारत लौटने पर गांधी ने बंबई में एक छोटा-सा मकान किराए पर लिया और एक ब्राह्मण रसोइया रखा। गांधी आधा खाना खुद ही पकाते थे, और उन्होंने रसोइए को कुछ विलायती शाकाहारी भोजन बनाना भी सिखाया। गांधी को घर में सफाई व तरतीब का कुछ ज्यादा ही ध्यान रहता था, खास तौर पर रसोईघर की सफाई का, और उन्होंने अपने रसोइए को साफ रहने, अपने कपड़े धोने और नियमित रूप से नहाने की शिक्षा दी।

दक्षिण अफ्रीका या भारत में गांधी के आश्रम में रसोइए नौकर नहीं रखे जाते थे।

गांधी मानते थे कि भोजन के लिए कई प्रकार की चीजें पकाना समय और शक्ति की बर्बादी है। वह अपने आश्रम के सदस्यों को मनपसंद खाना देने के पक्ष में नहीं थे। उन्होंने सबके लिए एक सीधी-सादी भोजन सूची बना दी थी। सभी का भोजन एक ही रसोई में पकता था।

उन्होंने पाक-कला को, जो कि एक अत्यंत जटिल और कठिन कला है, बिल्कुल सरल बना दिया था। उनके आश्रम में भोजन में बिना मांड निकाला चावल, रोटी, कच्चा सलाद, उबली और बिना मसाले की सब्जियाँ, फल और दूध या दही दिया जाता था। मिठाई की जगह ताजा गुड़ और शहद दिया जाता था।

जस्ट की पुस्तक 'रिटर्न टु नेचर' पढ़ने के बाद गांधी की यह दृढ़ धारणा बन गई कि मनुष्य को सिर्फ स्वाद के लिए नहीं बल्कि शरीर को स्वस्थ और पुष्ट रखने के लिए भोजन करना चाहिए। गांधी ने आहार-संबंधी नए-नए प्रयोग किए और यह शौक उनको जीवन भर बना रहा। कभी वे बिना पकाया भोजन करने का प्रयोग करते तो कभी किसी और प्रकार का। कुछ प्रयोगों के कारण तो उन्हें तकलीफ भी उठानी पड़ी। पाँच वर्ष तक वे फलाहार पर रहे। एक बार उन्होंने चार माह तक अंकुरित अनाज और कच्ची चीजें खाईं जिससे उन्हें पेचिस हो गई।

दक्षिण अफ्रीका में फीनिक्स आश्रम में गांधी आश्रम-पाठशाला के प्रधानाध्यापक और आश्रम के मुख्य रसोइया भी थे। वहाँ के प्रवासी भारतीयों ने एक बार यूरोपीयों को भोज दिया। इस अवसर पर गांधी ने भोजन तैयार करने और परोसने में हाथ बँटाया।

फीनिक्स आश्रम से सत्याग्रहियों का पहला जत्था जब सत्याग्रह करने को तैयार हुआ तब गांधी ने उनको अपने हाथों से भोजन बनाकर खिलाया। उन्होंने ढेर-सी रोटियाँ, टमाटर की चटनी, चावल और कढ़ी बनाई और खजूर की खीर भी बनाई। एक ओर वह अपने हाथों से खाना बनाते जाते थे और जेल-जीवन के बारे में बताते जाते थे। जब सत्याग्रहियों की संख्या बढ़कर दो हजार पहुँच गई तब गांधी सत्याग्रहियों का जत्था लेकर स्वयं सत्याग्रह के लिए निकले। इन सत्याग्रहियों के लिए राह में खाना बनाने का काम भी वही करते थे। एक दिन दाल पतली हो गई, दूसरे दिन चावल अधपके रह गए। लेकिन उनके साथियों के मन में अपने गांधी भाई के लिए इतना प्रेम और आदर था कि जैसा भी मिला, वैसा खाना बिना शिकायत किए खा गए। दक्षिण अफ्रीका की जेल में भी गांधी भोजन बनाने में अपने साथियों की लदद किया करते थे।

गांधी पाक-कला को शिक्षा का अत्यावश्यक अंग मानते थे और इस बात को गर्व से कहा करते थे कि टालस्टाय बाड़ी पर लगभग सभी लड़के भोजन बनाना जानते थे। दक्षिण

अफ्रीका से लौटने के कुछ समय बाद ही जब वह शांति-निकेतन गए तो वहाँ के छात्रों में भी उन्होंने भोजन पकाने का शौक पैदा कर दिया। छात्रों ने सामूहिक रसोई चलाने और बारी-बारी से भोजन बनाने के विचार को खूब पसंद किया। रवीन्द्रनाथ ठाकुर को संदेह तो था कि क्या यह योजना चल सकेगी ? पर उन्होंने इसकी सफलता के लिए अपना आशीर्वाद दिया।

मद्रास में एक छात्रावास में गांधी को यह देखकर बहुत आश्चर्य हुआ कि वहाँ न केवल विभिन्न जातियों और वर्गों के लड़कों के लिए अलग-अलग रसोईघर थे, बल्कि भिन्न-भिन्न रुचि को संतुष्ट करने के लिए तरह-तरह के व्यंजन बनाए जाते थे। एक बार एक बंगाली सज्जन के यहाँ, उनके सामने भाँति-भाँति के व्यंजन परोसे गए। इससे उन्हें बड़ी व्यथा हुई। उन्होंने निश्चय किया कि आगे से मैं प्रतिदिन भोजन में पाँच चीजों से अधिक नहीं लूँगा। बिहार में उन्होंने युगों से चली आ रही छूआछूत की बुराई को भी खत्म किया और चम्पारन में नील की खेती की जाँच में अपनी मदद करने वाले सभी वकीलों को उन्होंने एक ही रसोई में बना भोजन करने के लिए राजी कर लिया।

गांधी की आहार-सूची में कुछ बड़ी विचित्र चीजें होती थीं। नीम की पत्ती से बनी कुनैन जैसी कड़वी चटनी, आश्रम के बगल में लगी तेल की घानी से निकली पौष्टिक खली और दही का मिश्रण, उबले हुए सोयाबीन का भुर्ता, किसी भी हरे और ताजे साग का सलाद, रोटी को कूट कर उससे बनाई गई खीर, मोटे पिसे हुए गेहूँ का दलिया, और भुने हुए गेहूँ, चूरे से तैयार की गई कॉफ़ी, गांधी के आश्रम में परोसी जाने वाली विचित्र चीजें थीं।

गांधी चावल, दाल, रसेदार सब्जी, सलाद, संतरे और संतरे के छिलके का मुरब्बा, केक, बिना खमीरा या बेकिंग पाउडर की डबल रोटी, अच्छी चपाती और खाखरा बना सकते थे। सेवाग्राम मे एक विशेष प्रकार का चूल्हा प्रयोग किया जाता था जिसमें बहुत कम खर्च से सकड़ों आदमियों के लिए चावल और रोटियाँ तैयार हो सकती थीं और सब्जी उबाली जा सकती थी।

एक बार उनके एक साथी ने कहा : "अभी हाल में एक खबर थी कि घास में बहुत विटामिन होते हैं। जिस समय यह खोज हुई उस समय गांधी आश्रम में नहीं थे, वरना निश्चय ही वह रसोई बंद करा देते और हमसे कहते कि आप लोग आश्रम के बगीचे की घास खाएँ।"

हकीम

राजकोट के अल्फ्रेड हाई स्कूल से मैट्रिक पास कर लेने के बाद गांधी के घरवालों ने उन्हें ऊँची पढ़ाई के लिए इंग्लैंड भेजने का निश्चय किया। गांधी ने अपने भाई से कहा कि मेरी इच्छा इंग्लैंड जाकर डाक्टरी पढ़ने की है। पर उनके बड़े भाई ने इन्कार कर दिया क्योंकि वैष्णव घर का लड़का मुर्दों की चीर-फाड़ कैसे करेगा। गांधी के स्वर्गीय पिता करमचंद गांधी को भी यह बात पसंद नहीं थी। इस पर गांधी की यह इच्छा पूरी न हो सकी परंतु उनके मन से मिटी नहीं और जीवन भर उनको रोगियों की देखभाल करने का चाव बना रहा। खासकर प्राकृतिक चिकित्सा में उनकी बड़ी रुचि थी और इस विधि से उन्होंने अपना ही नहीं, अपने बाल-बच्चों और मित्रों का भी इलाज किया।

तीस वर्ष की आयु में जब गांधी दुबारा दक्षिण अफ्रीका से विलायत गए तो उस बार भी उनकी इच्छा डाक्टरी पढ़ने की हुई। लेकिन तब भी चीर-फाड़ ही उनके मार्ग में बाधक बनी। जीवित जीव-जंतुओं की चीर-फाड़ करने या 'सीरम' तैयार करने के लिए, उन पर तरह-तरह के प्रयोग करने के गांधी खिलाफ थे। इसी कारण एलोपैथ डाक्टरों और उनकी दवाओं से उन्हें नफरत थी। साथ ही गांधी इस पर भी दुखी थे कि आयुर्वेद के चिकित्सक नए प्रयोग करने की चेष्टा नहीं करते। होम्योपैथी में भी उनकी आस्था नहीं थी। प्राकृतिक चिकित्सा ने उनको बहुत प्रभावित किया और उसी के माध्यम से रोगियों की चिकित्सा और सेवा-सुश्रूषा करने की उनकी इतने दिनों की इच्छा पूरी हुई।

लुई कूने की पुस्तक ने उन पर बहुत प्रभाव डाला और इसीको पढ़कर वह जल के द्वारा रोगियों का उपचार करने में प्रवृत्त हुए। पहले उन्होंने अपने पर तथा अपनी पत्नी और लड़कों पर प्राकृतिक चिकित्सा के प्रयोग किए। इसके बाद गांधी मिट्टी, हवा, पानी और धूप आदि प्राकृतिक तत्वों द्वारा रोगों का उपचार करने लगे। गोली और मिक्श्चर पिलाकर शरीर में विष बढ़ाने की बजाय वह खान-पान में परहेज, उपवास और जड़ी-बूटी के उपयोग का समर्थन करते थे।

गांधी बड़े ध्यान से रोगी की दशा की देखभाल करते थे। इससे उनको इलाज में काफी सफलता मिलती थी। इस प्रकार गांधी दक्षिण अफ्रीका में पहले कुली बैरिस्टर होने के साथ-साथ पहले कुली डाक्टर भी थे। बहुत से भारतीय और यूरोपीय रोगी उनके पास आते थे। अपने बहुत से मुवक्किलों के वह घरेलू डाक्टर भी बन गए थे। उन दिनों उनकी चिकित्सा का ढंग बहुत नया और अनोखा जान पड़ता था लेकिन बाद में चिकित्सकों ने भी उनकी कुछ बातों का समर्थन किया।

एक बार उनके दस बरस के बेटे को टाइफाइड हो गया। डाक्टर ने उसे मुर्गी का शोरबा और अंडे देने को कहा। गांधी आमिष आहार नहीं देना चाहते थे, अतः उन्होंने स्वयं ही बालक की चिकित्सा करने का फैसला किया। वह रोगी को केवल पानी और संतरे का रस पिलाते थे और उसके शरीर पर गीली चादर लपेट कर ऊपर से कंबल ढक देते थे। एक बार बुखार की तेजी में बालक बड़बड़ाने लगा तो गांधी घबराए। फिर भी उन्होंने हिम्मत करके अपनी चिकित्सा जारी रखी और आखिर उसे अच्छा कर लिया। टाइफाइड के और भी कई रोगियों को उन्होंने इसी तरह सुई लगाए बिना अच्छा किया था।

एक बार कस्तूरबा को बहुत गंभीर रक्तहीनता (एनीमिया) हो गई। डाक्टर ने उन्हें गोमांस का शोरबा देने को कहा। लेकिन गांधी और कस्तूरबा दोनों में से कोई भी इसके लिए तैयार नहीं थे। गांधी ने कस्तूरबा को बहुत दिनों तक नींबू के पानी पर रखा। दाल और नमक मना करने पर कस्तूरबा बोल बैठी: "कहना तो बहुत आसान है, लेकिन क्या तुम भी इसे छोड़ सकते हो?" गांधी ने तुरंत उत्तर दिया: "यदि डाक्टर ऐसा कहे तो मैं निश्चय ही छोड़ सकता हूँ। किन्तु मैं डाक्टर के कहे बिना ही एक बरस तक दाल और नमक नहीं खाऊँगा।" बाद में कस्तूरबा बहुत अनुनय-विनय करके भी अपने हठी पति को इस व्रत से नहीं डिगा सकीं। फलस्वरूप रोगी और चिकित्सक दोनों ने दाल और नमक खाना बंद कर दिया। इसी प्रकार दूसरी बार गांधी ने कस्तूरबा को पंद्रह दिन तक उपवास कराकर और केवल नीम के पत्तों का रस पिलाकर अच्छा कर लिया।

गांधी पेट साफ रखने पर बहुत जोर देते थे। शरीर में जमे हुए विष को निकालने के लिए वह उपवास करने और एनीमा लेने की सलाह देते थे। उनकी राय थी कि सिर दर्द, अजीर्ण और कब्ज सामान्यतः अधिक खाने और शारीरिक श्रम न करने का ही कुफल है। प्रतिदिन नियमित रूप से तेज चाल से टहल कर वह अपने को स्वस्थ

रखते थे । वह कारावास के समय म छोटे-से घेरे के भीतर ही सुबह-शाम टहला करते थे । प्राणायाम को भी गांधी अच्छा समझते थे । वह यह जानते थे कि मानसिक अशांति के कारण शरीर भी रोगी हो जाता है और मन शांत होने पर शरीर भी स्वस्थ-सबल बना रहता है । राम-नाम को वह मानसिक अशांति की दवा समझते थे । उनके लिए राम-नाम का अर्थ था दुश्चिंताओं को छोड़कर ईश्वर पर पूरा भरोसा रखना । राम-नाम सारे दुखों की परम औषधि है ।

दक्षिण अफ्रीका में जब पठानों ने उन पर हमला किया तब उन्होंने अपने सिर, मुँह और पसलियों पर साफ़ मिट्टी की पट्टी का इस्तेमाल किया । सूजन जल्दी ही ठीक हो गई । प्लेग, टाइफाइड, मसूरिया, कब्ज, पीलिया, रक्तचाप, आग से जलने और शीतला आदि रोगों में तथा टूटी हुई हड्डी को जोड़ने के लिए गांधी मिट्टी की पट्टी का प्रयोग करते थे । जहाज में खेलते-खेलते उनके आठ बरस के पुत्र के हाथ की हड्डी टूट गई । गांधी ने बालक का हाथ मिट्टी की पट्टी चढ़ा कर ही अच्छा कर लिया । बहुत-से रोगियों को अच्छा करने के बावजूद गांधी कहते थे कि मेरे चिकित्सा संबंधी प्रयोगों पर आँख मूंद कर विश्वास न किया जाए । इस प्रकार नए ढंग से चिकित्सा करने में खतरा है इसे वे स्वीकार करते थे । गांधी समझते थे कि रोग के इलाज की अपेक्षा स्वास्थ्य को बनाए रखना ज्यादा जरूरी है । दो-चार प्रसूतिघर, अस्पताल या दवाखाने खोलने के बजाय वह लोगों को सफाई तथा स्वास्थ्य के नियमों का पालन सिखाने पर अधिक जोर देते थे ।

वह यह नहीं कहते थे कि किसी भी हालत में ऐलोपैथी दवा ली ही न जाए । सेवाग्राम में हैजा फैलने पर उन्होंने आश्रमवासियों तथा आसपास के गाँव वालों को टीके लगवाने की अनुमति दी । कारावास के समय 'अपेंडिसाइटिस' हो जाने पर उन्होंने आपरेशन करवाया था । इस कारण लोगों ने उनकी कटु आलोचना करते हुए उन्होंने बहुत-से पत्र लिखे थे । गांधी ने अपना दोष स्वीकार किया ।

गांधी जानते थे कि प्राकृतिक चिकित्सा सभी रोगों को अच्छा नहीं कर सकती । फिर भी कई कारणों से वह उसका प्रचार करना चाहते थे । एक यह था कि देश के गरीब लोग भी इस इलाज को कर सकते हैं । सतहत्तर वर्ष की अवस्था में गांधी ने बड़े उत्साहपूर्वक उरूली कंचन गाँव में एक प्राकृतिक चिकित्सा-केन्द्र की स्थापना की थी । वहाँ कोई बहुत महँगे सामान या उपकरण नहीं थे । गांधी के विचार में वही आदर्श चिकित्सक है जिसको औषधिशास्त्र की अच्छी जानकारी हो और उससे जनता को

लाभ पहुँचे, उसका सौदा न करे । वे चिकित्सकों की एक वार्षिक ग्राय बाँध देना चाहते थे जिससे वे ग्रमीर-गरीब किसी भी रोगी से पैसे लेने की ग्राशा रखे बिना उसका इलाज करें। उरूली कंचन में उन्होंने स्वयं कई दिन तक रोगियों की परीक्षा करके नुस्खे लिखे थे। एक नुस्खे में लिखा था: "राजू के लिए—धूपस्नान, कटिस्नान, घर्षण-स्नान, फलों का रस ग्रौर मट्ठा; दूध बंद। मट्ठा हज़म न हो तो सिर्फ फलों का रस ग्रौर उबला हुग्रा पानी पिए"। एक ग्रौर नुस्खे में था: "पार्वती के लिए — केवल मुसम्मी का रस, कटिस्नान, घर्षणस्नान, पेडू पर मिट्टी की पट्टी, प्रतिदिन सूर्यस्नान। इतने से वह ठीक हो जाएगी। राम-नाम का माहात्म्य उसे समझा दें।"

ग्राश्रम में लोग मजाक में कहा करते थे कि 'यदि बापू को ग्रपने पास बुलाना चाहो तो बीमार पड़ जाग्रो।' ग्राश्रम के हर रोगी के बारे में गांधी को छोटी-छोटी बातों की भी खबर रहती थी ग्रौर वह घूमकर लौटते वक्त उन्हें देख ग्राते थे। रोगी का पथ्य किस तरह का होगा, किस प्रकार उसका शरीर पोंछना होगा या मालिश करनी होगी इन सबके बारे में वह विस्तार से हिदायतें देते थे। एक बार उन्होंने सेवाग्राम में रोज एक घंटा रोगियों को देखने का निश्चय किया तो ग्रासपास के गाँवों से झुंड के झुंड लोग वहाँ पहुँचने लगे। सबके लिए उनका यही नुस्खा था 'हरी शाक खाग्रो, मट्ठा पियो, मिट्टी की पट्टी लगाग्रो।' कभी-कभी वह रोगी के मल की स्वयं ही जाँच करते थे। यदि रोगी बहुत दुर्बल न होता तो वह उसे खुली हवा में रखते थे। रोगी की हालत को ध्यान से देखकर गांधी इलाज बताते थे। उनके एक साथी का रक्तचाप उत्तेजना होने पर बढ़ जाता था। गांधी ने पहले दिन उनसे बहस करने के लिए एक व्यक्ति को भेजा ग्रौर बहस के पहले ग्रौर फिर बाद का रक्तचाप लिया। ग्रगले दिन एक तख्ते पर उन्होंने एक लकीर खींची ग्रौर उनसे उसी लकीर पर ग्रारी से सीधा चीरने को कहा तथा इस काम के पहले ग्रौर बाद में फिर उनका रक्तचाप लिया। तीसरे दिन उन्हें दो फर्लांग दौड़ाने के बाद जब उनका रक्तचाप लिग्रा गया तो पता चला कि चाप कम हो गया है। पहले दो दिन चाप बढ़ा था। गांधी ने उन्हें बताया कि जब भी तुम्हारा रक्तचाप बढ़े, तुम थोड़ा-सा घूमफिर कर उसे कम कर सकते हो।

गांधी चाहे कितने भी जरूरी काम या बातचीत में व्यस्त रहे हों रोगी की दवा-दारू सेवा-सुश्रूषा के संबंध में कोई भी व्यक्ति जाकर उनसे सलाह कर सकता था। जेल में भी वह ग्रपने साथी कैदियों की चिकित्सा की ग्रनुमति ग्रधिकारियों से ले लिया करते थे। प्रसिद्ध नेतागण कहीं मनमानी न करें, इसलिए वह उन्हें सदा ग्रपनी नजर के सामने रखते थे।

एक बार दमे का कोई रोगी उनके पास आया। गांधी ने उनसे बीड़ी-सिगरेट छोड़ने को कहा। तीन दिन के बाद भी उसकी हालत में कोई सुधार नहीं हुआ। वह बेचारा एकाएक न छोड़ पाने के कारण दो-तीन सिगरेट छिपाकर पी लेता था। तीसरे रोज रात को उसने ज्यों ही दियासलाई जलाकर सिगरेट सुलगानी चाही त्योंही टार्च की रोशनी उसके मुँह पर पड़ी। वह चौंक पड़ा और देखा कि गांधी सामने खड़े हैं। उसने गांधी से माफ़ी माँगी और बीड़ी-सिगरेट-तम्बाकू पीना छोड़ दिया; जिससे वह दमा के रोग से मुक्त हो गया। पर उनकी चिकित्सा से सभी रोगी स्वस्थ नहीं होते थे। सरहदी गांधी अब्दुल गफ्फार खां के सिर में चर्म रोग हो गया था। गांधी ने जो घरेलू दवाई बताई वह इस तगड़े पठान को रोग से ज्यादा तकलीफ देने लगी। एक बार बल्लभ-भाई पटेल के पैर में काँटा चुभ गया। गांधी ने आइडीन के बदले उस पर भिलावाँ जलाकर लगाने को कहा। बल्लभभाई ने कहा कि इस दवा की जलन से तो काँटे की चुभन ही अच्छी थी।

दाई

एक बार देश के कई प्रसिद्ध नेता गांधी से जरूरी बात करने सेवाग्राम पहुँचे। उन्होंने देखा कि गांधी बुखार में पड़े दो रोगियों के माथे पर पानी की पट्टी रखने तथा कटिस्नान कराने में लगे हुए थे। थोड़ी देर बाद एक नेता ने चिढ़कर कहा कि यदि आपको समय न हो तो हम लोग जाएँ। गांधी ने शांतभाव से कहा: "ये लोग बड़े कष्ट में हैं, इनको सेवा की बहुत जरूरत है।" इस पर दूसरे सज्जन ने कहा कि ये सब काम क्या आपको खुद ही करने चाहिए? गांधी ने उत्तर दिया: "और कौन करेगा भला? आप गाँव में जाएँ तो देखेंगे कि हर घर में कोई-न-कोई व्यक्ति बुखार में पड़ा हुआ है।"

बचपन से ही गांधी के मन में सेवा करने का बड़ा शौक था। पाठशाला बंद होते ही वह खेल-कूद में न लगकर जल्दी-से-जल्दी घर लौट आते और अपने रुग्ण पिता की सेवा में लग जाते थे। आयुर्वेदिक औषधि बनाकर उन्हें पिलाते, उनके जख्म धोते और काफी रात तक जागकर उनके पैर दबाते। उम्र के साथ-साथ गांधी का सेवा करने का शौक भी बढ़ता गया। दक्षिण अफ्रीका में एक दातव्य चिकित्सालय में जाकर वह प्रतिदिन दो घंटे रोगियों की सुश्रुषा करते थे। वहाँ उन्होंने नुस्खे के अनुसार दवा बनाना सीखा और इससे उन्हें किस रोग में कौन-सी दवा दी जाती है, इसका भी ज्ञान हुआ। वहाँ बहुत से दुखी भारतीय मजदूर इलाज के लिए आते थे। इस काम के लिए समय निकालने के लिए गांधी को अपना कुछ वकालती काम अपने एक साथी मुसलमान वकील को सौंप देना पड़ा।

दक्षिण अफ्रीका में तीन साल रहकर सन् १८९६ में गांधी थोड़े अरसे के लिए अपने परिवार को लेने भारत आए। उस समय गांधी के पास बहुत काम था। वह दक्षिण अफ्रीकावासी भारतीयों की दुर्दशा बताने के लिए देश के प्रसिद्ध नेताओं और पत्रकारों से मिल रहे थे। इस विषय पर उन्होंने एक 'हरी पुस्तिका' प्रकाशित की थी और उसे बाँटने में व्यस्त थे। लेकिन जैसे ही उन्हें मालूम हुआ कि उनके बहनोई बहुत बीमार हैं

श्रौर उनकी बहिन के पास इतने पैसे नहीं कि वह कोई दाई या श्राया रख सके, वे मरीज को अपने घर पर ले आए। उसे अपने कमरे में रखा श्रौर दिन-रात उसकी सेवा की।

सौ कामों में बँधे रहने पर भी वह प्रतिदिन आश्रम के रोगियों की खोज-खबर लेना नहीं भूलते थे। सभी रोगियों का पथ्य उनके कहे अनुसार तैयार किया जाता था श्रौर कभी-कभी तो उन्हें दिखाकर ही रोगियों को वह पथ्य दिया जाता था। गांधी से मिलने वालों की बैठक जब समाप्त हो जाती तो उनकी कुटिया कभी-कभी रोगियों की भोजनशाला बन जाती थी। चलने-फिरने में समर्थ सभी रोगी उनकी कुटिया में इकट्ठे होकर उन्हीं के सामने खाते थे। किसी रोग की छूत लग जाने का भय गांधी को नहीं था। एक बार एक कोढ़ी भिखारी उनके पास आया। उन्होंने उसे अपने ही घर में आश्रय दिया श्रौर कई दिनों तक उसके घाव धोकर मरहम-पट्टी करते रहे। बाद में गांधी ने उसे अस्पताल में भरती कराने का इन्तजाम कर दिया। जेल के अपने एक साथी के शरीर पर कोढ़ के लक्षण दिखाई देने पर गांधी जेल के अधिकारियों की अनुमति लेकर रोज उन्हें देखते थे। बाद में वह साथी बहुत बरसों तक सेवाग्राम आश्रम में रहे श्रौर गांधी ने बहुत दिनों तक उनके घाव धोकर उसकी मरहम-पट्टी की।

दक्षिण अफ्रीका में बोअर युद्ध श्रौर जुलू विद्रोह के समय गांधी को बड़े पैमाने पर पीड़ितों की सेवा करने का विशेष अवसर मिला था। दोनों अवसरों पर उन्होंने भारतीय स्वयंसेवक दल बनाकर युद्ध में घायलों की बड़ी सेवा की। गांधी इस दल के नायक थे श्रौर स्वयंसेवकों के साथ खुद वह पीड़ितों को डोली में डालकर मीलों दूर पहुँचाते थे। वे गोरे सैनिकों के लिए डाक्टरी नुस्खों के अनुसार दवाई तैयार करते थे। लोगों की सेवा का मौका पाकर उन्हें बहुत संतोष हुआ था। गोरे शासक लोग जुलू लोगों से अधिक कर वसूल करना चाहते थे। जुलू विद्रोहियों पर खूब जुल्म किया गया श्रौर बहुतों को कोड़ों की मार से अधमरा कर दिया था। गोरी नर्सें तो उन्हें छूना भी पाप समझती थीं। सेवा-सुश्रुषा श्रौर दवा के अभाव में उनके घाव पक कर सड़ने लगे। गांधी ने अपने दल के लोगों की सहायता से जुलू विद्रोहियों की मरहम-पट्टी तथा परिचर्या की। गांधी की सेवा की तारीफ करते हुए सरकार ने उन्हें 'जुलू-युद्ध पदक' श्रौर 'कसरे हिन्द स्वर्ण पदक' दिए थे।

एक बार दक्षिण अफ्रीका में अचानक प्लेग की महामारी फूट पड़ी। वहाँ की सोने की खानों में बहुत-से भारतीय मजदूर काम करते थे। उनकी बस्ती बहुत घनी श्रौर गंदी थी। यह महामारी वहाँ भी फैल गई है यह सुनते ही गांधी फौरन अपने चार

साथियों को लेकर वहाँ जा पहुँचे। आसपास कोई अस्पताल न होने के कारण उन्होंने एक गोदाम का दरवाजा तोड़ डाला और उसे साफ कर एक काम-चलाऊ अस्पताल बना लिया। नगरपालिका के अधिकारियों ने उन्हें कुछ दवाएँ और कीटाणुनाशक घोल दिया और एक नर्स को वहाँ भेज दिया। नर्स प्लेग से बचने के लिए ब्रांडी का सेवन करती थी। लेकिन गांधी की इसमें तनिक भी आस्था नहीं थी। अस्पताल में तेईस रोगी भरती हुए थे। गांधी रोगियों को दवा देते, उनका बिस्तर साफ करते और रात में उनके पास बैठ कर उनसे बातचीत करते और हिम्मत बँधाते। डाक्टर की अनुमति लेकर गांधी ने उनमें से तीन रोगियों पर मिट्टी की चिकित्सा आजमाई। इनमें से दो तो अच्छे हो गए मगर उस नर्स समेत सभी बाकी रोगी मर गए। गांधी खुद भी खूब सावधान रहते थे और परिश्रम के समय भरपेट खाना नहीं खाते थे। दूसरों की सेवा करने के साथ-साथ अपने शरीर का ध्यान रखना वह दाई का कर्तव्य मानते थे।

गांधी एनीमा देने, कटिस्नान कराने, शरीर पोंछने, तेल-मालिश करने, मिट्टी की पट्टी देने और भीगी चादर लपेटने में बहुत कुशल थे। अपने रक्तचाप को कम करने के लिए वह अपने माथे पर प्राय: मिट्टी की पट्टी रखा करते थे और उसी अवस्था में सम्माननीय अतिथियों से बातचीत करते रहते थे। उन्होंने जापानी कवि नोगुची से कहा था: "भारत की मिट्टी से मैं जन्मा हूँ, इसलिए भारत की मिट्टी को मैं मुकुट के रूप में अपने सिर पर धारण करता हूँ।"

रोगी की हालत बिगड़ने पर गांधी घबराते नहीं थे, बल्कि धीरज से उपचार करते थे। वह अपने प्रिय-जनों और स्त्री-पुत्रादि की चिकित्सा-परिचर्या भी बिना घबराए करते थे। एक बार उनके आठ साल के पुत्र के हाथ की हड्डी टूट गई। गांधी ने एक डाक्टर द्वारा बाँधी गई पट्टी को खोलकर बच्चे के हाथ के जख्म को साफ किया और मिट्टी की पट्टी बाँधते रहे जिससे हाथ ठीक हो गया। एक बार उनके दस साल के लड़के को टाइफाइड हो गया। चालीस दिन तक उन्होंने यत्न से उसकी परिचर्या की थी। गांधी उसके रोने-चिल्लाने पर ध्यान न देते और उसके शरीर पर गीली चादर लपेट कर उसे कंबल से ढकते थे। इस प्रकार उन्होंने उसे धीरे-धीरे ठीक कर लिया। वह रोगी की बहुत प्रेम से सेवा करते थे, किन्तु इलाज या सुश्रूषा में किसी प्रकार की ढिलाई नहीं आने देते थे। टाइफाइड के एक अन्य रोगी बालक की उन्होंने मिट्टी और जल से चिकित्सा की थी। डेढ़-डेढ़ घंटे बाद वह उसके पेडू पर एक इंच मोटी मिट्टी की पट्टी रखते थे। बुखार उतर जाने पर उन्होंने बालक को खूब पके हुए केले पर रखा। उन

केलों का वे स्वयं अच्छी तरह भुर्ता बनाते थे। उसे ज्यादा न खिला दे इस डर से उन्होंने यह काम उसकी माँ को भी नहीं सौंपा था। गांधी जानते थे कि रोगी की मानसिक शांति या प्रसन्नता का उसके स्वास्थ्य पर बहुत प्रभाव पड़ता है। इसलिए वह बातों से रोगी को बहलाए रखते थे। गांधी इतने जतन से तीमारदारी करते थे कि रोगी उन्हें देखकर प्रसन्न हो उठते थे। यों तो गांधी किसी भी नशे को अच्छा नहीं समझते थे किन्तु एक बार आश्रम के एक मद्रासी बालक को पेचिस हो गई और उसकी कॉफ़ी पीने की इच्छा हुई। ज्योंही गांधी को इसका पता चला तो उसकी तबियत जरा सँभलते ही उन्होंने अपने हाथ से कॉफ़ी बनाई और प्याले में भर कर खुद उसे दी।

दक्षिण अफ्रीका में कस्तूरबा को दो बार कड़ी बीमारी झेलनी पड़ी थी। डाक्टरों ने उनके बचने की आशा छोड़ दी थी। किन्तु गांधी ने धीरज, सतर्कता और हिम्मत से उनकी परिचर्या करके उन्हें चंगा कर दिया। पहली बार जेल से छूटने पर बा बहुत दुर्बल हो गई थीं। गांधी कस्तूरबा के दाँत साफ करते, कॉफ़ी बनाकर पिलाते, एनीमा देते और उनके पाखाने के बर्तन को साफ किया करते थे। एक बार उन्होंने कस्तूरबा के बाल काढ़ने की कोशिश भी की थी। सवेरा होते ही उन्हें बाँहों का सहारा देकर कमरे के बाहर खुली जगह में एक पेड़ की छाया में सुला देते और सारे दिन छाया के साथ-साथ उनका बिछौना भी सरकाते रहते थे।

दक्षिण अफ्रीका में कुशल हिन्दुस्तानी धाएँ नहीं थीं और गोरी दाइयाँ काली औरतों का बच्चा जनाने से इन्कार कर सकती थीं। इसलिए जब कस्तूरबा गर्भवती थीं तब गांधी ने प्रसूति का काम सीखा और स्वयं अपनी पत्नी की प्रसूति कराई।

आगा खाँ महल में कस्तूरबा की अंतिम बीमारी के समय भी बहुत सेवा-सुश्रूषा की और उनको कटिस्नान दिया। उस समय गांधी पचहत्तर वर्ष के थे।

शिक्षक

गांधी की पहली छात्रा कस्तूरबा थीं। गांधी का विवाह तेरह वर्ष की उम्र में हुआ था, जब वह स्कूल में पढ़ते थे, किन्तु उनकी पत्नी निरक्षर थीं। गांधी ने कस्तूरबा को रात को एकांत में पढ़ाना चाहा क्योंकि उस जमाने में पुराने-चाल के घरों में सबके सामने पत्नी से बोलने का रिवाज नहीं था। किन्तु तब कस्तूरबा की रुचि लिखने-पढ़ने में तनिक भी नहीं थी। अतः शिक्षक बनने का गांधी का यह प्रयत्न सफल न हो सका। फिर तिहत्तर वर्ष की उम्र में आगा खाँ महल में कैद के समय गांधी को कुछ अवकाश मिला और उन्होंने कस्तूरबा को फिर पढ़ाना आरंभ किया। बा के पढ़ने के लिए उन्होंने रामायण और महाभारत के कुछ भागों का संकलन किया और उन्हें गुजराती साहित्य, व्याकरण और भूगोल पढ़ाना शुरू किया। किन्तु बीमारी और बुढ़ौती की मारी बा कुछ प्रगति न कर सकीं।

विलायत से बैरिस्टर होकर लौट आने के बाद गांधी पर अपने परिवार के बालकों को व्यायाम और साहबी ढंग का रहन-सहन सिखाने की सनक सवार हो गई थी। बच्चे उनकी ओर अनायास ही आकृष्ट हो जाते हैं, यह देखकर उनकी यह धारणा बन गई थी कि मैं बहुत अच्छा शिक्षक हो सकता हूँ।

उनके शिक्षा के सिद्धांत और ढंग भी मौलिक होते थे। दक्षिण अफ्रीका में प्रवासी भारतीयों को अंग्रेजी जानना बहुत जरूरी है, यह समझकर वह खुद भारतीयों को अंग्रेजी सिखाने के लिए तैयार हो गए। उनको तीन छात्र मिले—एक मुसलमान हज्जाम, एक कारकुन और एक हिन्दू दुकानदार। वे अंग्रेजी सीखने को बहुत उत्सुक थे, किन्तु अपना धंधा छोड़कर नहीं आ पाते थे। गांधी प्रति दिन चार मील पैदल जाकर खुद उन्हें पढ़ाया करते थे। बिना फीस लिए आठ महीने तक मास्टरी करके उन्होंने अपने छात्रों को काम-चलाऊ अंग्रेजी सिखा दी थी। गांधी चलती-फिरती कक्षा भी लगाया करते थे। अपने छोटे-छोटे लड़कों को घर पढ़ाने के लिए गांधी समय नहीं निकाल पाते थे, इसलिए दफ्तर जाते समय बच्चे अपने बापू के साथ हो लेते थे। वे प्रति दिन पाँच मील

पैदल चलते-चलते कहानी के रूप म गुजराती साहित्य, कविता और अन्य विषयों का ज्ञान प्राप्त किया करते थे। बच्चों को स्कूल भेजने के सवाल पर झंझट उठ खड़ा हुआ था। अंग्रेजों के स्कूल में भारतीय बच्चों को दाखिला नहीं मिलता था। गांधी को विशेष छूट मिल सकती थी। किन्तु जो उनके सब भारतीय भाइयों को न मिले, उन्होंने ऐसी सुविधा नहीं ली। गांधी अपने बच्चों को अंग्रेजी स्कूलों में भेजकर मातृभाषा के बजाय अंग्रेजी और अंग्रेजियत नहीं सिखाना चाहते थे। कुछ दिनों के लिए एक अंग्रेज महिला ने उनके बच्चों को अंग्रेजी पढ़ाई और बाकी विषय उन्होंने खुद पढ़ाए। अपने घर में रहने वाले अंग्रेज मित्रों तथा आने-जाने वालों के संपर्क से उनके बच्चों ने अंग्रेजी बोलने का अच्छा अभ्यास कर लिया था।

फिनिक्स में गांधी ने आश्रमवासियों के बच्चों के लिए एक पाठशाला खोली। गांधी स्वयं उसके प्रधान शिक्षक थे और अन्य साथी सहशिक्षक। गांधी जो काम स्वयं नहीं कर पाते थे उसे दूसरों को करने का उपदेश नहीं देते थे। उनकी मान्यता थी कि जो शिक्षक स्वयं भीरु और अनियमित होगा वह विद्यार्थियों को साहस और नियम पालन नहीं सिखा पाएगा। शिक्षक को अपने विद्यार्थियों के समक्ष आदर्श रूप होना चाहिए। उन्हें जब भी समय मिलता, वह बहुत कुछ पढ़ डालते और कोई नई बात सीख लेते थे। पैंसठ साल की आयु में जेल में रहते हुए उन्होंने पहली बार आकाश में ग्रह-नक्षत्रों को पहचानना सीखा था।

आश्रमवासी विद्यार्थी सभी धर्मावलंबी थे। शिक्षकों में भी अंग्रेज, जर्मन और भारतीय थे। शिक्षक-गण आश्रम में खेती-बाड़ी आदि करने में इतने व्यस्त रहते थे कि कभी-कभी सीधे खेत से लौट कर पैरों में कीचड़ लपेटे कक्षा में चले आते। गांधी कभी-कभी छोटे बच्चे को गोद में लेकर पढ़ाया करते थे। फिनिक्स आश्रम में चाय, कोको और कॉफ़ी पीने की मनाही थी, क्योंकि मालिक इनकी खेती गुलाम मजदूरों से कराते थे। स्वास्थ्य और सबलता के लिए टैनिस आदि खेलों के बजाय उन्होंने दैनिक शारीरिक श्रम करने का नियम बनाया था। गांधी का विश्वास था कि बचपन में दस जने मिलकर यदि खेल के बहाने काम करने का अभ्यास कर लें तो आगे चलकर खेल-खेल में वे बड़ा काम कर सकते हैं।

पुस्तकें रटने के बजाय बच्चों को सच्चरित्र बनाना अधिक आवश्यक है, यह मानकर गांधी उनके चाल-चलन और मन के विकास पर अधिक ध्यान देते थे। गांधी इसको भूले नहीं थे कि अपनी छात्रावस्था म मजबूरन बहुत-सी पुस्तकों की रटाई के

कारण पढ़ाई कैसी नीरस हो गई थी। इसलिए वे कभी पुस्तक लेकर नहीं पढ़ाते थे। वह किताबी रटाई से विद्यार्थियों की बुद्धि के स्वाभाविक विकास को कुंठित नहीं करना चाहते थे। वह चाहते थे कि पढ़ाई विद्यार्थियों को भार न लगे, बल्कि उन्हें आनंद दे। महज लिखना-पढ़ना और हिसाब लगाना सीख जाने को या किताबी ज्ञान प्राप्त कर लेने को वह शिक्षा नहीं मानते थे।

गांधी बराबर यह कोशिश किया करते थे कि बच्चे सभी धर्मों का आदर करें। रमज़ान के महीने में मुसलमान लड़कों के साथ हिन्दू विद्यार्थी भी रोजे रखा करते थे। मुसलमान विद्यार्थी कभी-कभी हिन्दू परिवारों में रहते और उन्हीं के साथ भोजन किया करते थे। वे सभी शाकाहारी थे। सभी एक ही जगह बैठकर एक ही प्रार्थना करते थे। सभी विद्यार्थियों को माली, भंगी, चमार, बढ़ई और रसोइए का काम सीखना पड़ता था। विद्यार्थियों के मन में कहीं जाति, धर्म और किसी काम को छोटा या बड़ा समझने का भाव न पैदा हो, इसलिए गांधी सभी बच्चों को इकट्ठा करके गीता पाठ से लेकर जूतों की सिलाई तक खुद सिखाते थे।

टाल्स्टाय बाड़ी और साबरमती आश्रम में गांधी बच्चों को जूते गाँठना सिखाते थे। सब बालक अपनी-अपनी मातृभाषा की पुस्तकें पढ़ते थे, टाल्स्टाय आश्रम में प्राथमिक विद्यार्थियों को गांधी तमिल और उर्दू पढ़ाया करते थे। वह खुद भी गुजराती, मराठी, संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, तमिल, बंगला, अंग्रेजी, लैटिन और फ्रेंच जानते थे। विद्यार्थियों को हिन्दी, उर्दू, तमिल और गुजराती पढ़ाई जाती थी। प्रतिदिन शाम को कीर्तन होता था और पियानो पर मसीही भजन गाए जाते थे।

साबरमती आश्रम में भी यही शिक्षा-पद्धति अपनाई गई। विद्यार्थियों से किसी तरह की फीस नहीं ली जाती थी। विद्यार्थियों के अभिभावक, स्वेच्छा से आश्रम के कोष में दान देते थे। चार वर्ष से अधिक आयु के बच्चों को आश्रम में ही रहना पड़ता था। बालकों को उनकी मातृभाषा के माध्यम से इतिहास, भूगोल, गणित और अर्थ-शास्त्र पढ़ाया जाता था। संस्कृत, हिन्दी और दक्षिण भारत की एक भाषा की शिक्षा अनिवार्य थी। उर्दू, बंगला, तेलुगू और तमिल भाषा का अक्षर-परिचय कराया जाता था तथा अंग्रेजी ऐच्छिक विषय था। विद्यार्थियों को दिन में तीन बार बहुत ही सादा बिना मिर्च-मसाले का भी भोजन दिया जाता था और सादी-मोटी पोशाक पहननी पड़ती थी। स्वदेशी वस्तुओं के व्यवहार पर जोर दिया जाता था।

गांधी बालक-बालिकाओं की सह-शिक्षा के समर्थक थे और वह कहते थे कि 'मैं

लड़कियों को सात तालों में बंद करके रखने में विश्वास नहीं करता। लड़के-लड़कियों को साथ पढ़ने और मिलने-जुलने का मौका देना चाहिए।' आश्रम में यदि कभी लड़के-लड़कियों में कोई अनुचित व्यवहार की घटना होती तो गांधी प्रायश्चित के रूप में स्वयं उपवास करते थे।

आश्रम में कताई के साथ-साथ पिंजाई-धुनाई भी सिखाई जाती थी। छोटे-छोटे बालकों को कोई ऐसी दस्तकारी सिखाई जाती, जिससे उनकी पढ़ाई का कुछ खर्च निकल आए। छुट्टी का कोई दिन नहीं था, किन्तु अपना काम करने के लिए छात्रों को सप्ताह में दो दिन में कुछ समय मिला करता था। जो विद्यार्थी मजबूत होते थे, वे वर्ष में तीन महीने के लिए पैदल घूमने के लिए निकलते थे। गुजरात विद्यापीठ में गांधी बालकों को बाइबिल की कहानियाँ सुनाया करते थे और अंग्रेजी साहित्य के चुने हुए अंश पढ़ाया करते थे।

गांधी प्रचलित शिक्षा-पद्धति को बिल्कुल बदल देना चाहते थे। वह इसे केवल मध्यवित्त घरों के बच्चों के लिए ही नहीं, बल्कि देश के करोड़ों सामान्य लोगों के लिए उपयोगी बनाना चाहते थे। उन्होंने अपने लड़कों को किसी स्कूल या कालेज में नहीं पढ़ाया। गांधी अपने बच्चों को ऐसी महंगी शिक्षा नहीं देना चाहते थे जो सर्वसाधारण के लिए उपयोगी न हो। इस कारण उनके लड़के और उनकी माँ मन-ही-मन दुखी रहते थे। गांधी ने अच्छी तरह जाँच लिया कि एक विदेशी भाषा सीखने में लड़के-लड़कियों का कितना समय नष्ट होता है, उन्हें कितनी मेहनत करनी पड़ती है और वे किस प्रकार धीरे-धीरे अपनी भाषा तथा साहित्य से उदासीन हो जाते हैं। विदेशी भाषा में विदेशी शिक्षा पाकर अपने ही घर में वे परदेशी हो जाते हैं। ऊँची शिक्षा से भी विद्यार्थियों में आत्मविश्वास नहीं आ पाता और वे यह तय नहीं कर पाते कि पढ़ाई खत्म कर लेने के बाद क्या करें। गांधी चाहते थे कि देश की उच्च शिक्षा ऐसी हो जिसमें देश के अनेक वर्गों की परम्पराओं और संस्कृतियों का मेल हो तथा नई दुनिया का ज्ञान भी हो।

गांधी बच्चों को लिखने के पहले पढ़ना सिखाने के पक्ष में थे। वह चाहते थे कि बच्चों के अक्षर बहुत सुंदर बनें। उनकी अपनी लिखावट बहुत खराब थी, इस पर उनको बड़ी शर्म लगती थी। गांधी कहते थे कि बच्चों को पहले सरल रेखा, वक्र रेखा और त्रिभुज खींचना और पक्षी, फूल-पत्ते आदि आँकना सिखाना चाहिए। इससे उन्हें अक्षरों पर कलम फेरने की जरूरत नहीं पडेगी और वे सीधे सुडौल अक्षर बनाना ही सीखेंगे।

प्रचलित शिक्षा-पद्धति उनकी दृष्टि में तमाशा भर थी। इस शिक्षा से गाँव के बच्चों की आवश्यकता पूरी नहीं होती। गांधी चाहते थे कि बच्चों की शारीरिक और

मानसिक शक्ति का विकास हो और वे किताबी कीड़ा न बनें।

करीब तीस वर्ष के चिन्तन के बाद गांधी ने दस्तकारी के जरिए शिक्षा देने की 'बुनियादी तालीम' पद्धति निकाली। तिरसठ वर्ष की अवस्था में, कारावास के समय उन्होंने जिस शिक्षा-प्रणाली की परिकल्पना की थी, वही बाद में नई तालीम या वर्धा शिक्षा-पद्धति के नाम से प्रचलित हुई।

गांधी विद्यार्थियों को मारने-पीटने या शारीरिक दंड देने के विरोधी थे। एक बार क्रोध में आकर वह एक शरारती विद्यार्थी को रूल से मार बैठे, किन्तु इस प्रकार क्रोध आ जाने पर उन्हें बहुत दुख हुआ। उस विद्यार्थी को भी प्रहार से उतना दुख नहीं हुआ जितना इस बात से कि उसके कारण बापू को मानसिक कष्ट हुआ। उसने बापू से माफी माँगी। शारीरिक दंड देने का गांधी के जीवन में यही पहला और अंतिम अवसर था। वह विद्यार्थियों को खेलकूद में एक-दूसरे से होड़ करने के लिए खूब बढ़ावा देते थे किन्तु पढ़ाई में दूसरों को हराने के लिए वह कभी उत्साहित नहीं करते थे। उनका नंबर देने का तरीका भी विचित्र था। वह सबसे अच्छे लड़के के काम से अन्य लड़कों की तुलना नहीं करते थे। अगर विद्यार्थी ने अपनी पढ़ाई-लिखाई में तरक्की की तो उसे अधिक नंबर देते थे। गांधी विद्यार्थियों पर पूरा विश्वास करते थे और परीक्षा के समय उनकी निगरानी के लिए वहाँ किसी को नियुक्त नहीं करते थे। आश्रमिक शिक्षा का मूल उद्देश्य था बच्चे में स्वतंत्रता का भाव जगाना। गांधी कहते थे कि छोटे-से-छोटा बच्चा भी समझ ले कि मैं भी कुछ हूँ।

गांधी भारत के हर गाँव में बुनियादी विद्यालय खोलना चाहते थे। किन्तु उन्होंने इस बात को समझ लिया था कि शिक्षक अगर स्वावलम्बी नहीं होंगे तो इस गरीब मुल्क के गाँव-गाँव में विद्यालय खोलना संभव नहीं है। इसलिए बुनियादी विद्यालय के विद्यार्थियों को कोई दस्तकारी—साधारणतः कताई सीखनी पड़ती थी। गांधी जरूरी मानते थे कि समाज में समानता और सच्ची शांति स्थापित करने का काम बच्चों से शुरू करना चाहिए। वह कहते थे कि यदि विद्यार्थी पढ़-लिखकर हाथ से काम करना भूल जाएँ या हाथ से काम करने में शर्माएँ तो ऐसी शिक्षा से अनपढ़ रहकर पत्थर तोड़ना अच्छा है।

गांधी अपने नाती को कपास की खेती कैसे की जाती है, तकली की चकती कैसे बनाई जाती है, सूत से कपड़ा कैसे बुना जाता है और तार गिनकर सूत कैसे अटेरा जाता है, यह बताते हुए उसे भूगोल, सामान्य विज्ञान, गणित, ज्यामिति और सभ्यता

के इतिहास की बातें भी सिखाते थे। वह कहते थे कि कताई के साथ-साथ चर्खे की बनावट, चक्के एवं नली को देखकर विद्यार्थियों को ज्यामितिक वर्ग, वृत्त, रेखाओं आदि का ज्ञान हो जाएगा और लकड़ी तथा कपास पैदावार की जानकारी के साथ ही वे विभिन्न देशों की जलवायु से परिचित हो जाएँगे और उन्हें इस प्रकार भूगोल का भी ज्ञान हो जाएगा। इस प्रकार उनके मन में जानने की उत्सुकता और कोई नई चीज़ बनाने का आनंद पैदा होगा।

गांधी ने अनेक बार छात्र-छात्राओं से बातचीत में तथा गुजरात विद्यापीठ के अपने दीक्षांत भाषण में कहा था कि मैं अच्छी नौकरी प्राप्त कर कुरसी तोड़ने के लिए शिक्षा नहीं देना चाहता। वह चाहते थे कि शिक्षार्थी राष्ट्रीय जीवन को शक्तिशाली बनाएँ तथा देश के वीर योद्धा बनें। विद्यार्थियों का कर्तव्य है कि वे गाँव के किसान के सुख-दुख को समझें और उसके दुखों को दूर करने का प्रयास करें। तभी सर्वसाधारण के मन से असहायता, निराशा और कुसंस्कारों को दूर किया जा सकेगा।

रस्किन, टाल्स्टाय तथा रवीन्द्रनाथ के शिक्षा-संबधी विचारों का प्रभाव गांधी पर पड़ा था। संसार के जिन प्रसिद्ध व्यक्तियों ने शिक्षा की समस्या का अध्ययन किया है, गांधी भी उनमें से एक हैं। उन्होंने बिहार में कई प्राथमिक विद्यालय स्थापित किए तथा बंगाल में राष्ट्रीय विद्यायतन और अहमदाबाद में राष्ट्रीय विश्वविद्यालय की स्थापना की थी।

यह भी एक अजीब बात है कि शिक्षा के नए-नए सिद्धान्तों को निकालने वाले इस जन्मजात शिक्षक को, अपनी युवावस्था में अर्जी देने पर पचहत्तर रुपए की मास्टरी नहीं मिल सकती थी। यद्यपि वह लंदन से मैट्रिक और बैरिस्टरी की परीक्षा पास कर चुके थे, किन्तु 'ग्रेजुएट' न होने के कारण, उनकी अर्जी मंजूर नहीं हुई थी।

बुनकर

एक बार गिरफ्तारी के बाद अदालत में पेश किए जाने पर मजिस्ट्रेट ने गांधी से पूछा कि आपका पेशा क्या है। गांधी ने उत्तर दिया : "किसान, कतैया और बुनकर।" इस घटना से पच्चीस वर्ष पूर्व गांधी ने 'हिन्द स्वराज' नामक एक पुस्तक लिखी थी। उसमें उन्होंने स्वदेशी वस्तुओं का व्यवहार करने तथा भारत को भीतरी और बाहरी शोषण से मुक्त करने पर बहुत जोर दिया था। तब तक उन्होंने हथकरघा नहीं देखा था और ना ही उन्हें हथकरघे और चरखे में का फर्क मालूम था। किन्तु इतना वह अवश्य जानते थे कि भारत में मिल के बने विलायती कपड़े का आयात होने के बाद से ही देश के कपड़ा बुनकरों की दुर्गति हुई। विदेशी कपड़े के मोह में पड़कर भारतीयों ने अपने देश में गुलामी की जंजीरों को कसने में मदद दी। धीरे-धीरे उन्होंने कपड़ा बुनाई के संबंध में बहुत-सी बातें जान लीं। इतिहास पढ़ने से गांधी को मालूम हुआ कि भारत में विलायत की मिलों के कपड़े की खपत बढ़ाने के लिए भारत पर राज करने वाले अंग्रेज बनियों की ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भारतीय जुलाहों पर तरह-तरह के अत्याचार किए और ढाके की मलमल और शबनम बुनने वाले कारीगरों के अँगूठे कटवा डाले।

दो सौ वर्ष पहले भारत से सुदूर देशों में तीस लाख रुपए का कपड़ा निर्यात किया जाता था। किन्तु भारत में अंग्रेजों के चालीस साल के शासन के बाद भारतीय कपड़े का निर्यात एकदम बंद हो गया। सौ वर्ष बाद ब्रिटेन में बने कुल कपड़े का एक चौथाई —साठ करोड़ रुपये का विलायती कपड़ा भारत में आयात होने लगा था। दुनिया भर में प्रसिद्ध भारत का हथकरघे का शिल्प सर्वथा नष्ट हो गया, बुनकर बेकार होकर भूखों मरने लगे। एक अंग्रेज लाट ने लिखा कि भारत के बुनकर एकदम तबाह हो गए और तबाही का ऐसा उदाहरण संसार के इतिहास में ढूंढ़ने पर भी नहीं मिलेगा।

गांधी को मालूम हुआ कि मलमल बुनने वाले बंगाल के बुनकरों की रोजी कैसे मारी गई। पंजाब के बनकर बेकारी से तंग आकर फौज में भर्ती हो गए। जिस शिल्प कौशल को एक समय बड़े सम्मान से देखा जाता था अब उसे नीचा काम समझा जाने लगा।

गुजरात के बहुत से बुनकर पेट की खातिर अपना गाँव छोड़कर दूर-दूर के शहरों में भंगी का काम करने लगे। बहुत-सी स्त्रियाँ भी भंगिन बन गईं। उनकी घर-गृहस्थी उजड़ गई, इज्जत घटी, शांति चली गई और स्वास्थ्य और चरित्र चौपट हो गया। वे शराब और जुए के फेर में पड़ गए और उन्होंने अपना मनुष्यत्व गँवा दिया।

गांधी ने विदेशी वस्त्रों पर देश के इस परावलंबन को मिटाने का दृढ़ संकल्प किया तथा स्वराज्य के मूल आधार अपना कर स्वदेशी के प्रचार के लिए कमर कस ली। देशवासियों को आत्मनिर्भर बनाना उनके जीवन का मूलमंत्र बन गया। गांधी कहते थे: "यदि हमारी रुचि न बिगड़ गई होती तो हम शरीर से चिपके रहने वाले मिल के कपड़ों की बजाय खादी पसंद करते। पहले प्रकार का शिल्प प्राणघातक है और दूसरा प्राण-दायक। विदेशी मिलों के कपड़े के कारण हमारे लाखों बहन-भाई बेरोजगार हो गए। मशीनों में बने थोक माल में कारीगरों की सृजनशक्ति, रचनाकौशल और आनंद का अभाव रहता है।" आसाम के हाथ के बुने कपड़े की सुंदरता को सराहते हुए गांधी ने कहा कि वहाँ की स्त्रियाँ करघे पर कपड़ा नहीं बल्कि कविता बुनती हैं। मिल के मालिक पूँजीपति होते हैं और मिल की मशीनें विदेश से आती हैं। मिलों में मजदूरों का शोषण होता है और वे मनुष्य नहीं, मशीन के पुर्जे बन जाते हैं। लोग हाथ की दस्तकारी को भूल जाते हैं, इस कारण गांधी देश में कपड़े की मिलों की संख्या बढ़ाना नहीं चाहते थे। हर साल देश में साठ करोड़ रुपए के विलायती कपड़े के आयात को रोकने के लिए गांधी देशी हथकरघे के उद्योग को फिर से जिलाने की कोशिश करने लगे। विलायती कपड़ों से होने वाले नुकसान और देशी हथकरघा उद्योग से होने वाले लाभों को समझने के लिए उन्होंने पुस्तकें लिखीं, पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिखे और सभाओं में व्याख्यान दिए। खुद गांधी ने करघे पर कपड़ा बुनना सीखा। अहमदाबाद, हथकरघे का केन्द्र होने के कारण भारत लौटने पर गांधी ने वहाँ साबरमती आश्रम की स्थापना की। वहाँ रहने वाले आश्रमवासियों को स्वदेशी का व्रत लेना पड़ता था और हथकरघे पर बुना हुआ कपड़ा पहनना पड़ता था। आश्रम का नियम था, "अपना कपड़ा खुद बुनो नहीं तो बिना कपड़े के काम चलाओ।" गांधी ने कुशल बुनकरों को रखकर आश्रमवासियों को बाकायदा कपड़ा बुनने की शिक्षा दिलाई। पैंतालीस वर्ष की अवस्था में वह खुद प्रतिदिन नियमित रूप से करघे पर चार-पाँच घंटे कपड़ा बुना करते थे। एक वर्ष के भीतर आश्रम में चौदह करघे चलने लगे। सीखने वाला प्रत्येक बुनकर रोज बारह आने की मजूरी कमाता था। आश्रम में पहले-पहल में करघे पर केवल तीस इंच अर्ज का कपड़ा ही बुना जाता

था और स्त्रियाँ उस कपड़े को जोड़कर अपनी साड़ी बनाती थीं। बाद में साड़ी के मुताबिक चौड़े अर्ज का कपड़ा बुनने की व्यवस्था हुई।

गांधी बुनाई सीखकर ही संतुष्ट नहीं हो गए। उन्होंने देखा कि भारत और वर्मा के होशियार बुनकरों को भी प्रायः सूत के अभाव में वेकार बैठे रहना पड़ता था और उन्हें मिल के सूत पर निर्भर रहना पड़ता था। बुनकरों को स्वावलंबी बनाने के विचार से तथा उनके साथ-साथ कतैयों की मजदूरी जुटाने की खातिर गांधी ने सिफ चर्खे पर कते सूत से खादी का कपड़ा बुनने पर जोर दिया था। वह स्वयं भी हाथकते सूत से हाथ की बुनी चादर और कौपीन पहनते थे।

पेशेवर बुनकर हाथकते सूत को बुनने की अधिक मजदूरी माँगते थे, क्योंकि हाथ-कते सूत के मुकाबले मिल के सूत से बुनाई आसान होती थी। भारत स्वतंत्र हो जाने पर एक कार्यकर्ता ने कहा कि सरकार को सूत कातने वालों की मदद के लिए कुछ धन देना चाहिए। या बुनकरों को मिल के सूत का हिस्सा तभी देना चाहिए जब वे कुछ कपड़ा हाथ के कते सूत से बुनें। गांधी ने इसे मंजूर नहीं किया क्योंकि जबरदस्ती करने से लोगों के मन से खादी के प्रति प्रेम मिट जाएगा तथा बुनकर भी विरोध करेंगे। बुनकर स्वेच्छा से बुने, इसलिए उन्होंने चर्खे के सूत में सुधार करने को कहा। साथ ही गांधी ने बुनकरों को भी यह चेतावनी दी कि मिल के बने सूत पर निर्भर रहने पर अंत में तुम्हारा धंधा ही खत्म हो जाएगा। मिल-मालिक दूसरों की भलाई के लिए अपना धंधा नहीं करते। ज्योंही वे देखेंगे कि हाथ का बुना कपड़ा उनकी मिलों के कपड़े से होड़ कर रहा है, त्योंही वे तुम्हें सूत देना बन्द कर देंगे। गांधी ने यह भी कहा: "यदि मैं चर्खा कातने के साथ-साथ सब लोगों को करघा चलाने को भी कहता तो यह कठिनाई न खड़ी होती।"

कतैया

गांधी के नाम के साथ चर्खा और खादी का नाम ऐसा जुड़ गया है कि दोनों को अलग नहीं किया जा सकता । गांधी ने जब करघे पर कपड़ा बुनना सीखा तो शुरू में वह मिल के सूत से बुनते थे । फिर उनके मन में यह बात आई कि कपड़ा बुनने के साथ-साथ जब तक उसका सूत भी न काता जाए तब तक गाँव के लोग पूरी तरह स्वावलंबी न हो सकेंगे । गांधी जब दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे तो उन दिनों हमारे देश में चर्खे पर सूत कातने का चलन उठ गया था और बहुत-से लोग तो यह भी नहीं जानते थे कि चर्खा क्या चीज़ है । किसी समय गाँवों के घर-घर में जिस चर्खे की गूँज सुनाई दिया करती थी अब वह ढूँढ़े भी नहीं मिलती थी । अंत में एक महिला ने एक गाँव में चर्खा चलते देखा और गांधी को बताया । इस तरह चर्खे का पुनरुद्धार हुआ । गांधी ने आश्रमवासियों को चर्खे पर कातना सिखाने के लिए एक कतैये को बुलाकर रखा ।

बीमारी की हालत में, चर्खे की मधुर गुनगुनाहट सुनकर गांधी को बहुत आराम मिला । बहुत जल्दी उन्होंने चर्खा चलाना सीख लिया और यह प्रण किया कि प्रतिदिन आधा घंटा सूत काते बिना भोजन नहीं करूँगा । और बीस वर्ष तक अपने जीवन के आखिरी दिन तक उन्होंने इस व्रत का पालन किया था । उनका कता हुआ सूत बहुत बारीक तो नहीं किन्तु एकसार और मजबूत होता था । यात्रा में चलती हुई रेलगाड़ी या हिलते-डुलते जहाज में और सभाओं में मंच पर बैठे हुए बातचीत करते-करते वह चर्खे या तकली पर सूत कातते रहते थे । सव्यसाची अर्जुन की भाँति गांधी दोनों हाथों से चर्खा चला सकते थे । एक बार उनके दाहिने हाथ में दर्द हो गया तो वह बाएँ हाथ से चर्खा चलाने लगे । यदि सारे दिन बातचीत और मीटिंग से फ़ुरसत न मिलती तो वह आधी रात को सूत कात कर तभी विश्राम करते थे ।

एक बार गांधी से काफी देर तक बातचीत करने के बाद रवीन्द्रनाथ ने उनसे कहा कि मैंने आपका बहुत समय बरबाद कर दिया । गांधी मुस्कराते हुए बोले: "नहीं तो, मैं तो बातचीत करते हुए भी लगातार सूत कातता रहा था । प्रतिदिन जितनी देर में

सूत कातता हूँ, यही सोचता रहता हूँ कि मैं देश की संपदा में वृद्धि कर रहा हूँ। यदि एक करोड़ व्यक्ति प्रतिदिन एक घंटा सूत कातें तो देश के खजाने में रोज पचास हजार रुपए जमा हों। चर्खे के कारण किसी व्यक्ति की रोजी नहीं मारी जाती।"

गांधी चाहते थे कि गरीब से गरीब आदमी भी नंगा न रहे और सूत कातकर कपड़ा बुने और पहने। धनी व्यक्ति भी नियमपूर्वक कताई करे और अपना सूत दान करे। वह सूत कातने को कर्मयज्ञ कहते थे और हर आदमी से कहते थे कि इसे पालन करो। वह सी० वी० रमण और रवीन्द्रनाथ जैसे लोगों से भी सूत कातने को कहते थे। उनका कहना था कि अमीर और गरीब, दोनों जैसे खाते-पहनते हैं, उसी प्रकार दोनों के लिए श्रम करना भी आवश्यक है। वह कहा करते थे: "मैं जब सूत कातता हूँ तो मुझे लगता है कि मैं भारत की तकदीर बुन रहा हूँ। यदि हम चर्खा नहीं कातेंगे तो हमारे अभागे देश का उद्धार नहीं हो सकेगा।" छात्रों से उन्होंने कहा था : "यदि तुम एक गज खादी खरीदते हो तो उससे गरीब को दो पैसे मिलते हैं। हाथकती मोटी खादी सादगी की निशानी है, खादी में एक आत्मा है जो मिल के कपड़ों में नहीं।" वह घटिया या रद्दी खादी बनाने के या खुश करने के लिए शानदार खादी बनाने के विरुद्ध थे। वह कहते थे कि खादी भंडारों को ग्राहकों के मन में सुरुचि उत्पन्न करनी चाहिए। गांधी सुरुचिपूर्ण रेखाचित्र और सुंदर रंगों में छपाई के पक्ष में थे। वह कोरी खादी को धोकर बहुत उजला बनाने के पक्ष में नहीं थे। गांधी को इसकी पहचान थी कि कौन-सा सूत कितने नंबर का है और किस सूत को कितना बटा गया है। वह दो सूतों को बटकर कड़ा सूत बना सकते थे। आश्रम के बुनाई विभाग में शिक्षार्थियों को ये सब काम सिखाए जाते थे।

गाँव के लोग साल में चार-छः महीने बेकार रहते हैं। उनसे गांधी ठाले के समय सूत कातने को कहा करते थे। मशीनों के युग में चर्खे के प्रचार की चेष्टा को आलोचक पुराणपन्थी कहकर हँसी उड़ाते थे। इसके उत्तर में गांधी कहते थे कि आज भी हाथ की सुई सिलाई की मशीन से हारी नहीं है। टाइपराइटर के आविष्कार के बावजूद हाथ से लिखने की प्रथा बंद नहीं हुई है। इस दुनिया में कपड़े की मिल और चर्खा दोनों के लिए स्थान है। चर्खा सभी लोग चला सकते हैं, यहाँ तक कि छोटे से गाँव के एक कोने में बैठकर किसान चर्खा कात सकता है जबकि कपड़े की मिलें हमारे देश की विशाल जनसंख्या के बहुत कम लोगों को काम दे सकती हैं।

सन् १६२२ के असहयोग आंदोलन तथा विदेशी कपड़ों के बहिष्कार के

आरंभ करने के पूर्व जब उनसे सलाह मशविरा करन के लिए लोग आते थे तो गांधी उन्हें यह दिखाया करते थे कि वह और उनकी पत्नी कैसे अपने कपड़ों के लिए खुद सूत कातते हैं। वह हर सभा में लोगों से चर्खा चलाने का आग्रह करते थे तथा पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिखते थे। इस प्रकार गांधी ने उन दिनों सारे देश में हलचल पैदा कर दी थी। मोतीलाल नेहरू जैसे शौकीन और ठाटबाट के आदमी ने अपने कीमती शानदार विदेशी कपड़ों को जला दिया और मोटी खादी पहनना शुरू कर दिया था। एक बार मोतीलाल जी ने इलाहाबाद की सड़कों पर खादी बेचने की फेरी लगाई थी। गांधी के कहने से लाखों व्यक्तियों ने चर्खे और खादी को अपनाया।

खादी आंदोलन को अच्छी तरह से चलाने के लिए गांधी ने सन् १९२५ में अखिल भारतीय चर्खा संघ की स्थापना की। थोड़े ही से दिनों में देश में पचास लाख चर्खे चलने लगे। डेढ़ हजार गाँवों में कताई के केन्द्र खुले जिसमें पचास हजार कतैयों के अतिरिक्त बहुत से बुनकरों, रंगाई-छपाई करने वालों और दर्जियों को काम मिला। तकली और चर्खा तैयार करने के काम में हजारों लुहार-बढ़इयों को कमाई का एक जरिया मिला। चर्खे ने हजारों गरीब नंगे स्त्री-पुरुषों को काम दिया और तन ढकने को वस्त्र दिए। चर्खे से पाँच वर्ष के भीतर एक लाख से अधिक कतैयों को जीविका मिली तथा खादी का उत्पादन और बिक्री बढ़ी। गांधी कहा करते थे : "मेरी जानकारी में ऐसा कोई यंत्र नहीं जो इस छोटे-से घरेलू यंत्र का मुकाबला कर सके। ऐसी कोई अन्य संस्था नहीं है जिसने चर्खा संघ की तरह थोड़ी-सी पूँजी लगाकर अठारह वर्ष के भीतर लाखों गरीब स्त्री-पुरुषों के हाथों में चार करोड़ रुपए मजूरी दी हो। एक-दो परिवारों ने तो एक पैसे की रुई खरीदकर काम शुरू किया और अगले दिन सूत बेचकर दूनी रुई खरीदी। इस प्रकार वे लोग कुछ दिनों बाद अपने हाथ से बने सूत के कपड़े पहन सके थे।

पहले देश में जो चर्खे चलते थे, वे भारी होते थे और उन्हें एक जगह से दूसरी जगह उठाकर ले जाना कठिन था। जिसे सहज ही साथ ले जाया जा सके और जिस पर अधिक सूत भी काता जा सके ऐसे उठौआ चर्खे के आविष्कार के लिए एक लाख रुपए के पुरस्कार की घोषणा की गई। एक कार्यकर्ता ने बक्सनुमा चर्खे का नमूना तैयार किया। यरवदा जेल में, उस नमूने को परखकर तथा उसमें कुछ हेरफेर करके गांधी ने उसे प्रसिद्ध यरवदा चक्र का रूप दिया। बाद में इस चर्खे से भी सस्ती धनुष तकली निकली। गांधी इस पर भी उतनी ही तेजी से सूत कातते थे।

पिछले महायुद्ध के समय कपड़े की भारी कमी हो गई थी। कपड़े का राशन बँध

गया। मगर खादी पहनने वाले और सूत कातने वाले मजे में थे। गांधी और उनके अनुयायी, अपना कपड़ा खुद ही तैयार कर लिया करते थे और वे कपड़े के लिए सरकार या मिल-मालिकों का मुँह नहीं ताकते थे। गांधी ने अपने हाथ के कते सूत से बनी साड़ियाँ कस्तूरबा को भेंट की। कस्तूरबा भी प्रतिदिन सूत काता करती थीं।

एक व्यक्ति ने यह आक्षेप किया कि कतैयों को प्रतिदिन सिर्फ दो-चार आने मजूरी मिल पाती है। गांधी ने उत्तर दिया : "भारत में मोटे तौर पर औसत प्रति व्यक्ति की दैनिक आय सिर्फ तीन पैसा है। यदि चर्खे में इस अल्प आय में तीन पैसे भी और जोड़ सकूँ तो चर्खे को कामधेनु कहना चाहिए।" गाँव की गरीब स्त्रियाँ तथा अन्य बहुत से लोग दस मील पैदल चलकर कताई केन्द्र में आते और दो पैसा प्रति घन्टे के हिसाब से मजूरी पाते थे। गांधी ने चर्खा संघ से कहा कि इनके लिए कम से कम तीन आने दैनिक मजदूरी तय की जाए।

गांधी चर्खे को सिर्फ कमाई का साधन ही नहीं बल्कि जनसाधारण में आत्मबल तथा स्वावलंबन की भावना पैदा करने, मिलकर काम करने, शिक्षा देने तथा लोगों में कौमी अपनापा बढ़ाने का भी साधन मानते थे। उनकी दृष्टि में चर्खा लोगों को श्रम का महत्त्व सिखाता है तथा अहिंसा, विनय, स्वावलंबन और सेवा का प्रतीक है। चर्खे को बनाने के लिए सभी चीजें देश में सभी जगह आसानी से मिल जाती हैं, कोई भी लुहार और बढ़ई इसे बना सकता है और इसकी मरम्मत कर सकता है। इसको चलाने से हमारे हाथ महीन काम करने के अभ्यस्त हो जाते हैं। इसे सभी लोग सरलता से सीख सकते हैं। गाँव की झोपड़ियों में बैठकर बूढ़े-बुढ़िया, कमजोर व्यक्ति और पाँच बरस के बच्चे भी चर्खा चला सकते हैं। इससे अपने हाथों से कुछ बनाने की खुशी होती है और लाभ भी होता है।

किसी व्यक्ति ने गांधी से पूछा था कि जो भारतवासी इतना महीन सूत कातते और कपड़ा बुनते थे, जो दुनिया भर में मशहूर था और दूर-दूर के देशों में जाता था और जिसके सामने मिल का कपड़ा ठहर नहीं पाता था, वही भारत दरिद्र और पराधीन कैसे हो गया। गांधी ने उन्हें समझाते हुए कहा: "पुराने जमाने में चर्खे के साथ स्वाधीनता या स्वराज की भावना जुड़ी हुई नहीं थी। उन दिनों मालिक से सूखी रोटी का टुकड़ा या कौड़ी-छदाम पान के लिए गरीब स्त्रियाँ पेट की खातिर कताई करती थीं। हमें तो बुद्धिमानी से इसके महत्त्व को समझकर यह काम करना होगा और कताई से संबंधित छोटी-मोटी सभी बातों का वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त करना होगा। चाबीदार

गुड़िया की भाँति चर्खे का पहिया घुमाना बमन से माला जपने के समान निरर्थक है ।"

चर्खे के शिक्षात्मक गुणों पर जोर देते हुए गांधी ने बुनियादी तालीम के शिक्षकों से कहा था कि चर्खा जनसेवा का साधन है, यह बढ़ईगीरी, कुम्हारी या चित्रकला जैसा साधारण शिल्प नहीं है । इस चर्खे रूपी सूर्य के चारों ओर अन्य सब ग्रामोद्योग ग्रहों की भाँति घूमते हैं । विद्यार्थी अटेरन पर लिपटे हुए सूत के तारों को गिनकर किस प्रकार हिसाब सीखेंगे, कब किस देश में पहले कपास पैदा हुई थी, कपास की खेती के लिए कैसी जमीन अच्छी होती है, विभिन्न देशों में किस प्रकार वस्त्रोद्योग का विकास हुआ, किस प्रकार आपस में लेन-देन आरंभ हुआ आदि बातें बताते हुए गांधी ने शिक्षकों को समझाया कि इनके द्वारा किस प्रकार विद्यार्थियों को इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र आदि सिखाया जा सकता है । तकली कातते समय बच्चों को यह बताकर कि तकली की चकती पीतल की तथा एक विशेष माप की क्यों होती है, उसकी छड़ लोहे की क्यों होती है, उन्हें गणित सिखाया जा सकता है ।

गांधी ने अपना जन्मदिन मनाने की अनुमति तभी दी जब इसे चर्खा जयंती का रूप दिया गया । खादी और कताई को लोकप्रिय बनाने का कोई भी मौका वह जाने नहीं देते थे । वह जब कांग्रेस के सभापति बने तो उन्होंने अपने सभापतित्व काल में कांग्रेस सदस्यों से चार आना वार्षिक चंदे के बदले सूत के रूप में चंदा देने का नियम बनाया था और प्रत्येक सदस्य को कम से कम आध घंटे चर्खा कातकर, निर्दिष्ट मात्रा में सूत चर्खा संघ को भेजने को कहा । बाद में उन्होंने यह नियम बनाया कि खादी भंडारों से खादी वे ही खरीद सकेंगे जो दाम का कुछ अंश सूत के रूप में देंगे । इस पर जब लोगों ने शिकायत की कि हम सूत नहीं कात पाएँगे, तो गांधी ने कहा: "यदि सूत नहीं कातोगे तो खादी कैसे मिलेगी ?"

देश में कपड़े की कमी की बात गांधी नहीं मानते थे क्योंकि भारत में काफी कपास पैदा होती है और सूत कातने तथा बुनने योग्य बहुत-से हाथ भी हैं । घर-घर में तकली या चर्खा चलाते ही काफी कपड़ा बनाने के लायक सूत तैयार हो सकता है ।

गांधी के लिए सूत कातना एक आध्यात्मिक साधना का अंग बन गया था । वह समझते थे कि इस प्रकार वह गरीब-से-गरीब के निकट और साथ-साथ ईश्वर के निकट आते हैं । उन्होंने कहा कि 'कोई मुझे समझाना चाहे कि चर्खा आधुनिक युग की चीज़ नहीं तो इसे समझने में मुझे कई जन्म लगेंगे । अगर सब लोग मुझे छोड़ दें तो भी मैं चर्खा नहीं छोड़ूँगा ।'

बनिया

गांधी ने एक बार कहा था: "मैं जाति का बनिया हूँ, मेरे लोभ की कोई सीमा नहीं है।" गांधी के पिता रियासतों के दीवान थे और उनको अपने पिता की गद्दी संभालने को तैयार किया गया था। किन्तु उन्होंने दीवानी करने के बजाय सर्वस्व त्याग कर भिखारी का जीवन अपनाया, पर बनिए की तरह कौड़ी-कौड़ी बचाने की वृत्ति तो उनके स्वभाव में थी।

स्वभाव से मितव्ययी होने से गांधी की नजर सस्ती, टिकाऊ, किन्तु सुंदर चीजों पर पड़ती थी। उन्होंने शान-शौकत और कीमती चीजों को छोड़ दिया था। वह अपने हाथ की कती खादी की घुटनों तक की छोटी अद्धा धोती, मोटी चादर तथा हाथ की बनी मजबूत चप्पलें पहनते थे। अपनी स्त्री और पुत्रों को भी मोटी खादी के सादे कपड़े पहनाते थे। उनके भोजन में अनेक व्यंजन नहीं होते थे। केवल दो-एक बिना घी चुपड़ी रोटियाँ, बिना माँड़ निकाला भात, उबली हुई सब्जी, कच्ची पत्तियों का सलाद, बकरी का दूध, गुड़ या शहद और फल होता था। गांधी किसी भी दिन भोजन में पाँच चीजों से अधिक नहीं लेते थे।

एक बार एक धनी जमींदार ने उन्हें सोने की थाली में खाना परोसा। इससे गांधी बहुत दुखी हुए थे। भारत जैसे गरीब देश में, जहाँ गरीब आदमी मुश्किल से पेट भर पाता है, वहाँ गहनों और सजावट में धन लगाना उनकी दृष्टि में महापाप था। उनकी पत्नी के शरीर पर भी कोई गहना नहीं था।

गांधी ने अपने चारों लड़कों को किसी महँगे विद्यालय में नहीं भेजा था, जहाँ भारत के गरीबों की पहुँच भी न हो। वह खुद ही उन्हें पढ़ाते थे। उनके बेटे घर के काम-काज में हाथ बँटाते थे और उन्होंने पाखाना तक साफ किया। गांधी कोई नौकर-चाकर नहीं रखते थे और हर तरह के मेहनत के काम खुद ही किया करते थे। मिट्टी की कुटिया में रहना उन्हें अच्छा लगता था। उन्होंने कई बार पूरे भारत की यात्रा रेल के तीसरे दर्जे में की थी और पहली बार जब उन्होंने तीसरे दर्जे में यात्रा की थी तब

वह प्रसिद्ध भी नहीं थे । वह बिस्तरबंद वगैरह लेकर नहीं चलते थे । उनके पास कपड़े या कागजों की जो गठरियाँ होतीं उन्हीं से वह तकिये का काम लिया करते थे। बिछौने के नाम पर उनके पास देशी कंबल और खादी की मोटी चादर मात्र होती थी। पहले वह सोते समय मसहरी लगाते थे । फिर उनके मन में आया कि यह भी विलास है और उन्होंने उसे छोड़ दिया । थोड़े दिन तक सोने से पहले वह मुँह पर मिट्टी का तेल चुपड़ लिया करते और चादर लपेटकर सो जाते थे। उन्होंने सुना था कि गरीब किसान यही करते हैं क्योंकि मच्छरदानी खरीदना उनके बूते से बाहर है।

जब चौथी बार वह गोल मेज सम्मेलन में शामिल होने इंग्लैंड गए तो उन्होंने जहाज के सबसे नीचे दर्जे के डेक यात्री के रूप में यात्रा की। उन्होंने अपने निजी सचिवों तथा साथियों को भी बक्से भर कपड़े ले चलने को मना कर दिया और उनसे कहा कि विलायत में भी देशी पोशाक, धोती, कुर्ता तथा चप्पल पहनो। यात्रा के दौरान, एक भक्त ने उन्हें सात सौ रुपए का एक शाल भेंट किया था । गांधी ने कहा कि गरीबों के प्रतिनिधि को इतने मूल्यवान शाल का क्या करना और उन्होंने उसे जहाज पर ही सात हजार रुपए में नीलाम कर दिया। उनको जितने शाल भेंट में मिले थे उनसे एक अच्छी खासी दुकान खोली जा सकती थी। इन सबको बेचकर उसका पैसा वह हरिजन कोष में जमा कर देते थे।

गांधी ने जब फ्रांस देश में पैर रखा, तो इस कौपीनधारी व्यक्ति को देखकर शान-शौकत से रहने वाले फ्रांसीसी चौंक पड़े । गांधी ने मुस्कराते हुए उनसे कहा: "आप लोग 'प्लस-फोर्स' (घुटनों से चार अंगुल नीची) पोशाक पहनते हैं, मैं 'माइनस फोर्स' (घुटनों से चार अंगुल ऊँची) पहनता हूँ।" इंग्लैंड जैसे ठंडे और कोट-पैंटधारी लोगों के देश में भी आप अपनी इसी कोपीन जैसी धोती-चादर में रहेंगे, और क्या इसी वेश में इंग्लैंड के सम्राट् से मिलेंगे, इन प्रश्नों के उत्तर में गांधी ने मजाक में कहा: "अरे भाई, सम्राट इतने कपड़े पहनते हैं जो हम दोनों के लिए काफी होंगे।" गांधी गोलमेज सम्मेलन, ऑक्सफोर्ड तथा कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय और बकिंघम राजमहल में भी अधनंगी धोती, शाल और पैरों में मामूली चप्पलों का जोड़ा पहनकर गए थे । मि० चर्चिल ने एक बार इस पर बड़े नाराज होकर गांधी को 'अधनंगा फकीर' कहा। लेकिन गांधी इस पर तनिक भी लज्जित या नाराज नहीं हुए। उन्हें अपने अधनंगेपन पर गर्व था। लंदन में उनका खाने-पीने का खर्च दैनिक बारह आने से अधिक नहीं होता था।

गांधी पैसों का ही नहीं, समय और शब्दों का फिजूलखर्च भी सहन नहीं करते थे।

दिन-रात के चौबीसों घंटों का कार्यक्रम वह पहले से बना लिया करते थे और बहुत कड़ाई से समय का पालन करते थे। कोई भी काम निपटाने में उन्हें देरी नहीं लगती थी और हड़बड़ी में भी वह कोई काम नहीं करते थे। शब्दों की फिजूलखर्ची भी उन्हें नापसंद थी। उन्होंने बहुत-से भाषण दिए और लेख लिखे, जरूरत से ज्यादा एक शब्द भी नहीं लिखा या कहा। वह सदा अप्रासंगिक बातों को बचा जाया करते थे। अपने काम आने वाले पत्रों और लिफाफों को वह इकट्ठा करते रहते थे और उनके कोरे भाग को काम में लाते थे। आकार के अनुसार ऐसे कागजों के गट्ठर बँधे रखते थे और गांधी उन्हें पत्र लिखने के काम में लाया करते थे। उनके बहुत से मूल्यवान लेख और वक्तव्य; बड़े-लाट, राजाओं, मंत्रियों को चिट्ठियाँ इन्हीं कागजों के टुकड़ों पर लिखी गई थीं। एक बच्चे द्वारा भेंट दी गई पेंसिल का एक छोटा टुकड़ा और बरसों से काम में आने वाला झावाँ खो जाने पर वह बहुत परेशान हुए थे और जब तक वह मिल नहीं पाया उन्होंने अपने सहायकों की नाक में दम कर दी। देश के स्वाधीन हो जाने पर छपे हुए महँगे दफ्तरी पैड पर व्यक्तिगत पत्र लिखने के लिए गांधी ने मंत्रियों और विधान सभा के सदस्यों को बहुत फटकारा था। उन्होंने कहा था कि यदि हम इस प्रकार अंग्रेजों के तौर-तरीकों और फिजूलखर्ची की नकल करेंगे तो अपनी भी हानि करेंगे और देश की भी। अंग्रेज लोग तो शासकवर्ग के थे और अपनी दीन-हीन प्रजा पर रोब जमाने के लिए यह सब शान-शौकत रखते थे। लेकिन हमें व्यर्थ पैसे बरबाद करना शोभा नहीं देता। हमारे लिए उर्दू या देवनागरी में नाम-पता छपे हुए हाथ के बने कागज का व्यवहार ही उचित है। नेताओं या अधिकारियों को दामी मानपत्र या फूलों के गजरे भी नहीं स्वीकार करने चाहिए।

गांधी जो पैसा या धन गरीबों के लिए इकट्ठा करते थे, उसके खर्च करने में एक-एक पैसे की बचत करते थे। मनीआर्डरों की फीस, चैक या ड्राफ्ट आदि के खर्च वह हमेशा बचाने की कोशिश करते थे। कोई भी स्वयंसेवक या दूसरा कार्यकर्ता अगर जनता के धन का दुरुपयोग करता, तो वह उसे बहुत डाँटते-फटकारते थे। सन् १८९६ में जब गांधी भारत आए तो उन्हें एक हजार रुपए की थैली भेंट की गई थी। उन्होंने उसका एक-एक पैसे का पूरा हिसाब दिया। इसमें बड़े-बड़े रोचक खर्चे शामिल थे जैसे कि एक आना ट्राम पर, पानी दो पैसे का, जादूगरी का खेल आठ आना, थिएटर चार रुपए आदि।

चंदे में मिले मनीआर्डर या चैक पर कमीशन भी उन्हें अखरता था। वह कहते थे: "हमारे राष्ट्रीय आंदोलन में फिजूलखर्ची की कोई गुंजाइश नहीं होनी चाहिए। मेरे

लिए छाँटकर बढ़िया से बढ़िया संतरे या अंगूर लाना अथवा बारह की जरूरत होने पर एक सौ बीस लाना फिजूलखर्ची नहीं तो और क्या है। हम गरीब बेजुबान जनता के पैसे के ट्रस्टी हैं।" उनका यह स्थायी आदेश था कि 'जहाँ पैदल जा सकते हैं वहाँ गाड़ी मत लो।' अपनी जवानी में वह इसी नियम का पालन करते थे। दो-चार रुपए बचाने की खातिर वह आश्रम से बाजार तक बयालीस मील पैदल जाकर सामान लाया करते थे। गांधी अपने दफ्तर या अदालत पैदल ही आया-जाया करते थे।

'क्या देश प्रेम के लिए जाति विद्वेष आवश्यक है?' विषय पर उनके भाषण के लिए टिकट लगाया गया था। इससे जो रुपया आया वह उन्होंने देशबन्धु स्मारक कोष को दे दिया। 'ईश्वर सत्य स्वरूप है' इस विषय पर गांधी पहली बार भाषण रिकार्ड कराने को राजी हुए। इसके लिए पैंसठ हजार रूपए मिले थे जो उन्होंने हरिजन कोष में दे दिए थे।

गांधी न केवल पैसे बचाने में कुशल थे बल्कि वह पैसे बनाना भी जानते थे। सरकार ने जब उनकी पुस्तक जब्त कर ली तो वह फेरी लगाकर खुल्लम-खुल्ला अपनी पुस्तक बेचा करते थे। इस प्रकार चार आने की 'हिन्द स्वराज' पुस्तक को उन्होंने पाँच, दस और पचास रुपए तक बेचा। दांडी-यात्रा के समय उन्होंने समुद्र-तट से जो आधा तोला प्राकृतिक नमक उठाया था उसे उनके एक मित्र ने सवा पाँच सौ रुपए में खरीदा। उन दिनों आधा तोले सोने का दाम चालीस रुपए था। दुनिया के किसी व्यापारी ने इतनी ऊँची दर पर नमक नहीं बेचा होगा।

लोग उनके हस्ताक्षर लेने को उत्सुक रहते हैं, यह जानकर उन्होंने अपने हस्ताक्षर की फीस पाँच रुपए लगा दी। जो दानी उन्हें हजारों रुपए देते थे उनको भी पाँच रुपए देकर ही उनका हस्ताक्षर मिलता था। खादी की बिक्री बढ़ाने के लिए गांधी ने दुकान पर बैठ कर खादी बेची। अपने दाहिने नापने का गज और बाएँ खादी का थान रखकर, गांधी फर-फर रसीद काटते और फुर्ती से खादी बेचते। पचास मिनट में उन्होंने पाँच सौ रुपए की खादी बेच डाली। इसी प्रकार उन्होंने एक बार यात्रा करते हुए स्टेशनों पर खादी बेची थी। एक बार खादी-प्रदर्शनी का उद्घाटन करते हुए उनकी अपील पर लोगों ने एक सप्ताह में चार हजार रुपए की खादी खरीदी थी। जबकि वहाँ वर्ष भर में छः हजार रुपए से अधिक की खादी नहीं बिकती थी। उनके भाषण के जादू से एक खादी भंडार की वार्षिक बिक्री अड़तालीस रुपए से बढ़कर पैंसठ हजार तीन सौ बारह रुपए तक जा पहुँची। कांग्रेस अधिवेशन के समय गांधी सभी दर्शकों से कहते थे कि ग्रामोद्योग प्रदर्शनी का प्रचार करिए, लोगों को ले आइए और ग्रामोद्योग की चीजें खरीदवाइए।

गांधी के विदेशी वस्त्र के बहिष्कार आंदोलन के फलस्वरूप बंगाल में विदेशी कपड़े की बिक्री घटकर आधी रह गई थी। अन्य प्रदेशों ने भी बंगाल का अनुकरण करके भारत में विदेशी व्यापार को लगभग ठप कर दिया था। गांधी यह समझते थे कि भारत की दिन-प्रतिदिन बढ़ती हुई माँग के साथ-साथ यहाँ अधिक माल बनाना आवश्यक है और विदेशी व्यापार को उसी हद तक प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए जहाँ तक वह भारत के लिए हानिकर न हो। वह नहीं चाहते थे कि लोग घर में विदेशी पहनें और बाहर दिखावे के लिए खादी धारण करें। बड़े-बड़े व्यवसायियों ने विदेशी माल का आयात करके अंग्रेजों से सहयोग किया तथा इसी कारण देश का सर्वनाश हुआ। नष्ट होते हुए ग्रामोद्योगों को फिर से जिलाना और सारे भारतवासियों को खादीधारी बनाना उनका उद्देश्य था।

अपने रचनात्मक कामों के लिए गांधी को विदेशी सरकार से तो आर्थिक सहायता मिलने का प्रश्न ही नहीं था, देशवासी भी उस ओर से उदासीन थे। फिर भी उन्होंने हिम्मत नहीं हारी। देश के लोगों को आत्मनिर्भर बनाने तथा अपने दैनिक व्यवहार की वस्तुओं के उत्पादन में निपुण बना देने के लिए वह दृढ़-प्रतिज्ञ थे। उनकी कोशिशों से अखिल भारतीय चर्खा संघ और अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ की स्थापना हुई तथा देश भर में इनकी शाखाएँ खुलीं। वर्धा स्थित मगनवाड़ी में कताई, बुनाई, कागज और साबुन बनाना, चमड़े का काम, लुहार-बढ़ई का काम, घानी से तेल निकालना और ढेकली से धान कूटने के धंधे चालू किए गए। वह बार-बार कहते थे कि अपने खेत के गेहूँ से घर में बनी रोटी जितनी सस्ती और मीठी होती है, उतनी बाजार की रोटी नहीं; उसी प्रकार अपने हाथ से कते-बुने कपड़े की अपेक्षा अन्य कपड़ा सस्ता और अच्छा नहीं हो सकता। बेकार रहने के कारण मनुष्य के मन में जो आलस्य पैदा होता है उससे वह बहुत दुखी होते थे। राष्ट्रीय उन्नति के लिए घरेलू धंधों को वह अनिवार्य समझते थे। वह कहते थे : "यह शर्म की बात है कि देश में काफी अन्न पैदा होने पर भी हम विदेश से गेहूँ मँगाते हैं। हाथ का छँटा चावल और गुड़ के बजाय पालिश किया हुआ सारहीन सफेद चावल और सफेद चीनी हम खाते हैं। मशीन का पिसा हुआ कम पौष्टिक आटा खाकर रोगों को न्यौता देते हैं। गाँव के कोल्हुओं को हमने बेकार कर दिया है। आज के ग्रामीण में वह हुनर और बुद्धिमानी नहीं रह गई जो पचास साल पहले के लोगों में थी। वह निरंतर देता ही है और पाता कुछ नहीं। मैं ऐसा करना चाहता हूँ कि ऐसी किसी वस्तु का उत्पादन शहरों में नहीं हो जो आसानी से थोड़ा सिखाकर भली-भाँति गाँवों में तैयार हो सकती है।"

गांधी लोगों से कहते थे कि 'धान हाथ से कूटिए, गेहूँ हाथ की चक्की से पीसिए, मिल की चीनी के बदले ताजा गुड़ खाइए और चर्खा तथा करघा चलाइए।' आश्रम में आने वाले विदेशी अतिथियों को वह गाँव का बना सुनहरा गुड़ चखाया करते थे।

वह देशवासियों से कहते थे कि यह कहना ठीक नहीं कि खादी मिल के कपड़े से महँगी पड़ती है। वह कहते थे कि 'मिल-मालिक की कोशिश होगी कि उसका माल सस्ता हो चाहे मजदूर को वाजिब मजदूरी मिले या न मिले। और हम मजदूर को जीने लायक मजदूरी देना चाहते हैं। नहीं तो हम भी उनके शोषण के दोषी होंगे।' हाथ का कागज बनाने वाला एक व्यापारी मजदूरों को छः पैसे प्रतिदिन मजदूरी देता था और उसने शीघ्र ही और सस्ता कागज देने का आश्वासन दिया था। किन्तु गांधी ने उससे कहा कि जो मजदूर का पेट काटकर मिले, मैं ऐसा कम दाम का कागज नहीं चाहता।

किसानों तथा कारीगरों का शोषण करके जो लोग रोजी कमाते हैं, गांधी उन्हें खत्म कर देना चाहते थे। किसानों को अपने मेहनत की पूरी कीमत नहीं मिलती थी क्योंकि बीच-वाले लोग उनका माल सस्ते दामों खरीदकर ग्राहकों को ऊँचे दाम पर बेचते हैं, और इस प्रकार किसान का अंश हड़प जाते हैं, इस बात को गांधी जानते थे।

गांधी कपड़े और अनाज के कंट्रोल के विरुद्ध थे। वह मुनाफाखोरी और चोर-बाजारी करने वाले लोभी व्यापारियों की निन्दा करते थे। वह कहते थे कि व्यापारी लोगों को धोखा देकर धन कमाते हैं और सोचते हैं कि धर्म-कर्म तथा दान-पुण्य करने से वह पाप धुल जाएगा। उन्होंने व्यापारियों को संबोधित करते हुए कहा था : "बड़े-बड़े व्यापारी और पूँजीपति तो मुँह से ब्रिटिश सरकार का विरोध करते हैं किन्तु चलते उसी की मर्जी से हैं, उनकी कृपा से उन्हें व्यापार में शायद पाँच प्रतिशत लाभ होता है और नब्बे प्रतिशत सरकार का पेट भरने में चला जाता है। भारतीय व्यापारियों की धोखेबाजी के कारण ही स्वदेशी आंदोलन सफल नहीं हो सका क्योंकि उन्होंने स्वदेशी के नाम पर विदेशी माल बेचा। व्यापारियों के कारण देश पराधीन हुआ। आशा है, अब वे देश का पुनरुद्धार करने में सहयोग करेंगे।"

किसान

गांधी ने एक कविता पढ़ी थी जिसमें कहा गया था कि 'किसान संसार का अन्न-पिता है । ईश्वर सृष्टि का पालनकर्ता है और किसान उसका दाहिना हाथ है ।' गांधी का विश्वास था कि जब किसानों को दरिद्रता और अज्ञान से मुक्ति मिलेगी, तभी भारत की वास्तविक स्वतंत्रता आएगी । गांधी ने कहा था : "देश की जनसंख्या के पचहत्तर प्रतिशत से भी अधिक लोग किसान हैं । वही इस धरती को हरी-भरी बनाए हुए हैं । जमीन के असली मालिक किसान हैं न कि शहर में बैठे मौज उड़ाने वाले जमींदार—सारी भूमि गोपाल की है । यदि हम किसान के परिश्रम का फल उससे छीन लें तो स्वराज्य का कोई अर्थ ही नहीं होगा । वकील, डाक्टर या धनी जमींदार देश को सच्ची आजादी नहीं दिला सकते, वह तो किसानों के द्वारा ही प्राप्त हो सकती है ।"

किसानों को जमीन का बहुत अधिक लगान देना पड़ता था । राजस्व का एक चौथाई किसानों से ही प्राप्त होता था । कहीं कोई विशाल भवन या अट्टालिका बन रही होती तो उसे देखकर या उसकी खबर सुनकर गांधी दीर्घ निश्वास लेकर कहा करते थे : "ये महल किसान की कमाई पर खड़े हो रहे हैं, जिसे रहने को टूटी झोंपड़ी भी नहीं मिल पाती ।" शहरों की आलीशान इमारतें बाग-बगीचे और बड़े-बड़े बाजारों को देखकर गांधी को किसानों पर लगे भारी लगान और नाजायज उगाही, कमरतोड़ ऋण, निरक्षरता और दुख-कष्टों की याद आ जाती थी ।

गांधी ने किसान के घर जन्म नहीं लिया था मगर किसान बनने की उन्होंने विशेष कोशिश की । बचपन से ही उन्हें फल-फूल लगाने का चाव था । प्रतिदिन स्कूल से लौटते ही वह छत पर रखे हुए गमलों में बाल्टियाँ भर-भर कर पानी डाला करते थे । सुबह कुएँ से स्नान करके लौटते हुए वह अपनी पसंद के पौधे लाकर लगाया करते थे । उन्होंने तैंतीस वर्ष की आयु में दक्षिण अफ्रीका में खेती शुरू की और किसान का जीवन अपनाया । फार्म बनाने के लिए उन्होंने एक एकड़ जमीन खरीदी जिसमें कुछ वृक्ष लगे थे और अपने परिवार और मित्रों के साथ वहाँ रहने लगे । गांधी में वकालत की अच्छी

कमाई का धंधा धीरे-धीरे छोड़कर किसानी बाना अपनाया। वह किसानी का सब काम करते थे, जमीन गोड़ते, पानी खींचते, फल-सब्जी लगाते और लकड़ी चीरते थे। कुछ ही दिनों में गांधी ने उस जमीन को फलों से भरे हुए बाग में बदल दिया था। उन्होंने वैज्ञानिक ढंग से मधुमक्खी-पालन किया था। वह जानते थे कि मधुमक्खियाँ अपने पैरों में फूलों का पराग लिपटाकर ले जाती हैं और पौधों पर बैठती हैं जिससे फलों की उपज में वृद्धि होती है। इसी कारण वह बाग-बगीचों तथा खेतों के आसपास मधुमक्खियाँ पालने को कहते थे। दक्षिण अफ्रीका में दस वर्ष खेती करने से गांधी को वैज्ञानिक खेती का बहुत अच्छा अनुभव हो गया था।

बंजर धरती या औजारों और पानी की कमी आदि से वह नहीं घबराते थे। वह कहते थे कि किसान का असली धन तो अपनी मेहनत है। उसका ठीक उपयोग हो तो धरती सोना उगल सकती है। वह चाहते थे कि किसान उद्यमी और आत्मनिर्भर बनें। नई तालीम के एक कार्यकर्ता ने उनसे कहा कि मेरे हिस्से की जमीन खेती के लायक नहीं है। इसके उत्तर में गांधी ने कहा था: "हमने दक्षिण अफ्रीका में जिस जमीन पर खेती करना शुरू किया था, उसकी तो तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। यदि मैं तुम्हारी जगह होता तो पहले हल चलाने की बजाय विद्यार्थियों को कुदाल देकर धरती गुड़वाता। बाद में हल चलवाता। कीचड़ की एक हलकी-सी परत या कूड़े की खाद देने से तरकारी बहुत अच्छी होती है।" गाँव से दूर जगह में छिछली खाइयाँ खोद दी जाएँ और उसी में लोग मल त्याग करें तो बहुत अच्छी खाद तैयार हो सकती है। गांधी कहते थे कि लड़कों को खेती का काम सिखाना चाहिए जिससे वे इस काम को नीची नजर से न देखें और इसे अच्छा और ऊँचा धंधा समझें।

सन् १९४६ में जब नोआखाली के पीड़ित हिन्दुओं ने उनसे शिकायत की कि मुसलमान किसान हमें हल-बैल देते नहीं, ऐसी हालत में हम कैसे खेती करें और कैसे यहाँ रहें तो गांधी ने तुरंत उत्तर दिया: "कुदाल-फावड़े लेकर जमीन खोदने में जुट जाओ। फावड़े-कुदाल से गोड़ी हुई जमीन में भी फसल कम नहीं होगी।"

सन् १९४३ में गांधी के जेल से छूटने के कुछ पहले बंगाल में अकाल के कारण लाखों आदमियों की जानें गई थीं। सरकारी अधिकारी और देशवासी उस भयंकर दृश्य को भूल नहीं सके थे। पाँच वर्ष बाद फिर अकाल पड़ने के खतरे दिखाई देते ही तत्कालीन बड़े लाट ने अपने निजी सचिव को विमान से सेवाग्राम भेजा और गांधी की सलाह माँगी। गांधी ने बिना किसी हिचकिचाहट के उनसे कहा था: "हमारे देश में काफी उपजाऊ

जमीन है, काफी पानी है और समर्थ लोगों का भी अभाव नहीं है। ऐसी हालत में अकाल कैसे पड़ेगा? जनता को आत्मनिर्भर बनना होगा। जो दो दाने अन्न खाए उसे चार दाने अन्न पैदा करना होगा। प्रत्येक व्यक्ति अपनी जरूरत का खाना पैदा करे। थोड़ी-सी साफ मिट्टी में खाद डालकर उसे किसी मिट्टी या टीन के बर्तन में भरकर सब्जी के कुछ बीज छिड़क दें और पानी देते रहें तो घर-घर में खेती हो सकती है।...शुभ अवसरों पर भोज बंद कर देना होगा। अनाज को बाहर भेजना भी बंद करना होगा। गाजर, शलगम, शकरकंद, आलू, केले से काफी खाद्य मिल जाएगा। अपने भोजन में अनाज और दालें कम करके अनाज का खर्च बचाना चाहिए जिससे कि अनाज बच सके और उसका संग्रह हो सके।"

गांधी ने कहा था कि 'आत्मनिर्भर बनने के लिए हमें कड़ा संयम करना होगा। खाने की आदत बदलनी होगी और विदेशों से भीख न माँगने का संकल्प करके जो कुछ देश में उत्पन्न हो उससे काम चलाना होगा।' राशन के जमाने में कपड़े और अनाज के मामले में गांधी को सरकार से कुछ भी नहीं माँगना पड़ा था। वह दाल-भात और रोटी खाए बिना रह सकते थे, चीनी वह नहीं खाते थे और अपने लिए खादी के कपड़े खुद ही बना लिया करते थे।

गांधी ने 'हरिजन' में लेख लिखकर बताया था कि गोबर, कूड़ा, मलमूत्र आदि से किस प्रकार खाद तैयार की जा सकती है। उनके आश्रम में मलमूत्र को गाड़कर खाद बनाई जाती थी। किन्तु यह बात गाँव वालों को पसन्द नहीं आई। गांधी रासायनिक खाद की अपेक्षा गोबर और कूड़े जैसी जैव खाद को ज्यादा अच्छा मानते थे। उनको शंका थी कि रासायनिक खाद से अंत में धरती को नुकसान पहुँच सकता है।

हल-बैल के बदले ट्रैक्टर का प्रयोग करने में उनका तनिक भी उत्साह नहीं था। साबरमती आश्रम में उन्होंने अनेक प्रकार के सुधरे हलों का प्रयोग किया। पर बैलों का पुराना हल ही उन्हें अच्छा लगा। इससे जुताई करने से मिट्टी की खुदाई बहुत गहरी नहीं होती। फसल के लायक ठीक खुदाई होती है। मशीनों से इसके अतिरिक्त काम लेकर बहुत-से लोगों के मुँह का कौर छीन लेना गांधी को अच्छा नहीं लगता था। वह देशभर के लोगों को उत्पादन के काम में लगाने को उत्सुक थे। गांधी को भय था कि यंत्रों के प्रयोग से जमीन की सृजन शक्ति घट जाएगी।

गांधी जमीन के छोटे-छोटे टुकड़ों के बँटवारे के विरुद्ध थे। 'जमीन के सौ टुकड़े करके छोटे-छोटे टुकड़ों में खेती करने की अपेक्षा सौ किसानों का मिलकर चक में

खेती करना और आपस में पैदावार बाँट लेना ज्यादा लाभदायक है। प्रत्येक किसान अलग-अलग, हल-बैल-गाड़ी रखे, यह भी फिजूलखर्ची है ।"

सामूहिक ढंग पर खेती करने से सबके पशुओं के लिए एक गोचर बन सकती है। पशुओं की भली-भाँति देखभाल और चिकित्सा की जा सकती है और स्वस्थ बलवान साँड़ रखे जा सकते हैं । किसी अकेले गरीब किसान के लिए यह सब करना संभव नहीं है । पशुओं का चारा जुटाने में किसानों के सामने तरह-तरह की कठिनाइयाँ आती हैं और वे गरीबी से तंग आकर अपने बछड़े बेच डालते हैं या फिर भूखा मरने के लिए खुला छोड़ देते हैं और पशुओं पर जुल्म तथा अत्याचार करते हैं ।

गौ-पालन और गौ-रक्षा पर गांधी बहुत जोर देते थे। उनकी राय में गौ-धन ही किसान का सच्चा धन है । भारत के गाँवों का दौरा करते हुए किसानों के निस्तेज चेहरे और पशुओं की दयनीय अवस्था देखकर उन्होंने कहा था : "गौ-माता की पूजा करने वाले हम भारतवासी पशुओं की जितनी उपेक्षा करते हैं उतनी शायद इस संसार में और कहीं नहीं की जाती होगी । आजकल गौ-सेवा का मतलब रह गया है गौ-रक्षा के प्रश्न पर मुसलमानों से झगड़ा करना और गौ-माता की पूँछ पकड़ कर पुण्य कमाना। आजकल अधिकांश गौ-शालाएँ और पिंजरापोल बूचड़ खाने बन गए हैं। पिंजरापोलों को बूढ़ी बीमार गायों को आश्रय देने के साथ-साथ गौ-पालन के केन्द्र होना चाहिए जिससे लोग गौ-पालन सीख सकें। गांधी भैंस के दूध-मक्खन की अपेक्षा गाय के दूध-मक्खन को ज्यादा उपयोगी समझते थे। वह कहते थे कि गाय केवल जीवन में ही नहीं, मर जाने पर भी आदमी की सेवा करती है। उसकी हड्डियाँ, आँतें, चमड़ा, और सींग आदि भी काम में आ जाते हैं।

गांधी अपने आश्रम में अच्छे स्वस्थ साँड़ पालते थे और कम खर्च में एक आदर्श गौ-शाला चलाते थे। गौ-शाला की हर बात की वह पूरी खबर रखते थे। प्रत्येक नवजात बछिया-बछड़ा उनके हाथ का स्नेह-स्पर्श पाता था। असाध्य रोग से पीड़ित एक बछडा बहुत कष्ट में था और डाक्टर उसके कष्ट को कम नहीं कर पा रहा था। अंत में गांधी ने उसे इंजैक्शन देकर कष्ट से छुटकारा देने का निर्णय किया। उन्होंने डाक्टर की बछड़े को विषैला इंजैक्शन देने में खुद सहायता की । अहिंसा के इतने बड़े साधक की इस हिंसा से देश में बड़ा हो-हल्ला मचा। एक जैन सज्जन ने धमकी दी कि गांधी के रक्त से ही यह पाप धोया जाएगा। लेकिन गांधी ने शांतिपूर्वक इन सब कटु टीका-टिप्पणियों को सह लिया।

दुष्ट बंदरों के उत्पात से फलों और फसलों को बचाने के लिए, वह उनको मारने को

भी सहमत हो गए। उन्होंने लिखा : "मैं स्वयं किसान हूँ, इसलिए ऐसा उपाय निकालना मेरा कर्तव्य है, जिसके द्वारा कम से कम हिंसा करके बंदरों के उत्पात को रोका जा सके। बंदूक की गोली दाग कर ग्रावाज करने से बंदर दाँत निकालकर खोंखियाते हैं ग्रौर तनिक भी नहीं डरते। यदि कोई ग्रन्य उपाय न सूझा तो मैं उन्हें मारने की बात पर भी विचार करूँगा।" परंतु ग्राश्रम में किसी बंदर को मारने की नौबत नहीं ग्राई।

गरीब किसान की ग्राय बढ़ाने की ग्रोर भी गांधी का ध्यान गया था। ग्रधिकांश किसान वर्ष में चार मास बेकार रहते हैं ग्रौर सिर्फ खेती की ग्रामदनी से ग्रपना खर्चा नहीं चला पाते, इस पर गांधी ने तीस करोड़ किसानों की इस विवशताजन्य बेकारी को दूर करने के लिए स्त्रियों से चर्खा चलाने तथा पुरुषों से करघे पर बुनाई करने को कहा था। वह ग्रनपढ़, ग्रधनंगे ग्रौर ग्राधा पेट खाने वाले किसानों की ग्राय कम-से-कम इतनी बढ़ा देना चाहते थे, जिससे वे भरपेट भोजन, तन ढकने को वस्त्र तथा रहने को घर ग्रौर शिक्षा प्राप्त कर सकें। वह किसानों के मन में ग्रन्याय का विरोध करने की भावना भी जगा देना चाहते थे। किसान-मजदूरों के राज का समर्थन करते हुए उन्होंने कहा था : "जब किसान यह समझ लेगा कि इस दुर्दशा का कारण भाग्य नहीं है, तब वह उचित, ग्रनुचित का विचार न करेगा। स्वराज्य क्या है इसका ग्रसली मतलब जान लेने पर उसे कोई दबाकर नहीं रख सकेगा।"

गांधी के नेतृत्व में डरपोक किसानों में साहस का संचार हुग्रा ग्रौर उसने सीना तानकर ग्रन्याय का विरोध करना सीखा। सविनय ग्रवज्ञा, ग्रसहयोग ग्रौर लगान-बंदी के ग्रांदोलन में भाग लिया तथा सरकारी ग्रत्याचारों की परवाह न कर नमक कानून तोड़ा। इस ग्रांदोलन में भाग लेने के कारण उसकी जमीन-जायदाद, हल-बैल ग्रादि नीलाम कर दिए गए थे। किन्तु वह झुका या दबा नहीं। उसकी ग्राथिक हानि हुई किन्तु नैतिक बल बढ़ा।

नीलाम वाला

गांधी की चलती तो वह कानून बना देते कि न तो उनको कोई महात्मा कहे न कोई उनके पाँव छुए। मगर उनके दर्शनों के लिए उमड़ने वाले अपार जनसमूह को रोकना वैसा ही कठिन था जैसा समुद्र की लहरों को। देश के काम से, उन्हें देश भर में जनता के बीच घूमना-फिरना पड़ता था। जहाँ-जहाँ वे जाते, चाहे गाँव हो या नगर, लोग अपार श्रद्धा से और प्रेम से उनका स्वागत करते। उन पर फूलमाला चढ़ाने के लिए, जड़ाऊ पेटियों में रखकर मानपत्र भेंट करने के लिए, रुपए-पैसे और गहने उन पर न्यौछावर करने के लिए लोगों में होड़ लगी रहती थी। गांधी उनके प्रेम से तो प्रभावित होते थे परंतु उनको इस बात से बहुत दुख होता था कि जिस देश में लोगों को भर पेट खाना भी नहीं मिल पाता और औसत आमदनी तीन पैसे प्रतिदिन से भी कम है, वहाँ इतना धन फूलमालाओं, अभिनंदनपत्रों और स्वागत समारोहों पर बरबाद किया जाए।

वह बार-बार लोगों से कहा करते थे कि इस तरह पैसे को बरबाद मत करो परंतु लोग सुनते ही नहीं थे। तब उनके दिमाग में एक बात आई कि गरीब दुखियों की सेवा के लिए धन इकट्ठा करने में, जनता के इस उत्साह का प्रयोग क्यों न किया जाए। इसकी तरकीब उन्होंने यह निकाली कि उनको भेंट में मिलने वाली चीजों को नीलाम किया जाए। बस, गांधी नीलाम वाले बन गए और नीलाम भी वह इस ढंग से करते कि पेशेवर नीलामियाँ भी उनसे मात खा जाए। जब फूलमाला चढ़ाने का क्रम खत्म हो जाता तो मंच पर से वह लोगों से कहते : "मेरी प्यारी-प्यारी छोटी बच्चियाँ तो यहाँ हैं नहीं जिनको मैं ये फूलमालाएँ दे देता। फिर मैं इनका क्या करूँ। क्या कोई इनको खरीदेगा ?" इसके बाद वह एक-एक माला हाथ में उठा लेते और नीलाम की बोली शुरू करते--दो रुपए. . .एक बार. . .तीन रुपए. . .पाँच रुपए...एक. . .एक...इस तरह से वह बड़े मजे से बोली बढ़ाते जाते। उनके हाथ से नीलाम होने वाली छोटी-छोटी और न टिकने वाली चीजों को, एक संतरा या एक माला को भी लेने के लिए लोगों में बोली बोलने की होड़ लग जाती। कभी एक माला के तीस रुपए लगते तो कभी तीन सौ रुपए तक बोली

चली जाती। गाँव में भी लोग बोली बोलने में पीछे नहीं रहते थे।

एक बार गांधी ने एक सुंदर नक्काशीदार डिब्बे को हाथ में लेकर कहा: "इसका दाम ढाई सौ रु० है, नहीं, नहीं, मैं भूल से कह गया इसका दाम पचहत्तर रु० है।" जब किसी ने तीन सौ रु० की बोली बोली तो गांधी ने कहा—"तीन सौ रु० एक... तीन सौ रुपए.....आओ भाइयो बोलो। इससे पहले मैंने इसी तरह का डिब्बा हजार रुपए में नीलाम किया था।" इस प्रकार गांधी बोली बोलने में अपनी सारी कला लगा देते। कलकत्ता के लोगों ने उनको तीन बार, बड़ी सुंदर और कीमती पेटियों में रखकर कलापूर्ण मानपत्र भेंट किए और तीनों बार उन्होंने उन्हें नीलाम कर दिया। उनका कहना था: "लोग इतने प्रेम से मुझे जो चीजें भेंट करते हैं यह न समझिए कि उनको नीलाम करके मैं उनके प्रेम का अपमान करता हूँ। मेरे पास कोई बक्सा तो नहीं है, न आश्रम में ही उनको रखने की कोई जगह है।......उन्हें नीलाम करने में कोई बुराई मुझे नहीं दिखाई पड़ती। यह तो लोगों की उदारता को जगाने और अच्छे कामों में दान देने को प्रेरित करने का एक बहुत निर्दोष तरीका है। और यह भी याद रखिए कि जो लोग मेरे इन नीलामों में बोली बोलते हैं वे केवल मुझे खुश करने के लिए ही इतनी ऊँची बोली नहीं लगाते।"

ऐसा कम ही होता था कि उनके नीलाम में बोली ऊँची न चढ़े। उन्होंने एक नींबू को दस रुपए में, सूत की एक माला दो सौ एक रुपए में, सोने की एक तकली को पाँच हजार रुपए में और एक जड़ाऊ पेटी को एक हजार रुपए में नीलाम किया। एक बार एक संस्था का शिलान्यास करने के बाद उन्होंने तसले और कन्नी को नीलाम कर दिया और इससे उन्हें हजार रुपए मिले। एक बार ऐसे ही नीलाम करते समय गांधी ने एक छोटे बच्चे की ओर बाँह बढ़ाई। बच्चा गले में सोने का तावीज पहने था। बच्चे की माँ ने बच्चे को गोद में उठाकर उनके पास कर दिया। गांधी ने बच्चे को प्यार से थपथपाया। उसके गले से सोने का तावीज उतार लिया और उसे नीलाम कर दिया।

एक सभा में गांधी ने घोषणा की: "मेरे पास अँगूठियों का अक्षय भंडार है। मैं उन्हें बेचना चाहता हूँ।" एक अँगूठी जो पहले तीन बार नीलाम की जा चुकी थी फिर नीलाम पर चढ़ाई गई और अंत में चार सौ पैंतालीस रुपए में बिकी। इस अँगूठी का वास्तविक मूल्य करीब तीस रुपए था। एक बार उनकी एक सभा में लोगों ने जो दान दिया उसमें नोटों, चाँदी और ताँबे के सिक्कों के बीच एक कौड़ी भी मिली। गांधी ने कहा कि यह कौड़ी सोने-चाँदी के सिक्कों से भी मूल्यवान है। जिसने इसे दिया उसके पास शायद

ौर कुछ देने का नहीं था और उसने अपना सब कुछ दे दिया है और वास्तव में वह कौड़ी सोने की कौड़ी से भी अधिक कीमती साबित सिद्ध हुई। एक आदमी ने उसे एक सौ ग्यारह रुपए में खरीदा।

दौरे, काम के बोझ और लगातार जटिल समस्याओं की उलझनों के बावजूद गांधी की जिंदादिली और सहज बनियावृत्ति में कोई अंतर नहीं आता था। अठहत्तर साल की उम्र में हिंदू-मुस्लिम तनाव और सांप्रदायिक दंगों से व्यथित गांधी ने बिहार का दौरा किया। दंगे से पीड़ित मुसलमानों की सहायता के लिए धन इकट्ठा किया और जो गहने उन्हें भेंट में मिले उन्हें नीलाम करके और रुपए जमा किए।

गांधी के पास अपनी कोई धन-संपत्ति नहीं थी। उन्होंने अकिंचन आश्रमवासी का जीवन अपनाया था। एक बार एक सार्वजनिक कोष में देने के लिए उनके पास सिर्फ ताँबे का एक पैसा ही जुड़ सका। इस पैसे को उनके एक भक्त ने पाँच सौ रुपए में खरीद लिया और मूल्यवान यादगार के रूप में अपने पास रखा।

भिखारी

गांधी धीरे-धीरे सार्वजनिक कार्यों में ज्यादा-से-ज्यादा उलझते गए और इसके साथ ही उन्हें अपने परिवार और वकालत की तरफ ध्यान देने का समय भी कम मिलने लगा। उन्होंने अनुभव किया कि यदि वह जनता की सेवा करना चाहते हैं तो उन्हें सुख-सुविधा धन-संपत्ति सबको छोड़कर गरीबी का जीवन अपनाना होगा। एक ऐसा समय आ गया जब संपत्ति रखना उन्हें अपराध जैसा लगने लगा। और उसका त्याग करने में उन्हें वास्तविक सुख और आनंद मिलने लगा। एक-एक करके उन्होंने अपने पास की सब चीजें सार्वजनिक कार्यों में लगा दी। उन्होंने अपनी पैतृक संपत्ति में भी अपना भाग छोड़ दिया और अपना जो जीवन-बीमा कराया था उसकी किस्तें चुकानी बंद कर दी। जिस वकालत से उन्हें चार हजार रुपए मासिक की आमदनी होती थी उसे उन्होंने छोड़ दिया। उन्होंने फीनिक्स बस्ती जिसकी कीमत पैंसठ हजार रुपए थी, और दक्षिण अफ्रीका के मित्रों से भेंट में मिली चाँदी, सोने और हीरे की चीजों को एक सार्वजनिक न्यास बना कर उसे सौंप दिया। आर्थिक सुरक्षा और योगक्षेम की उन्होंने चिंता ही छोड़ दी और अपनी पत्नी तथा लड़कों के लिए भी कुछ रुपया-पैसा नहीं रखा।

उनके मित्र और भक्त बिना माँगे खुशी से जो दान दे देते थे उसी से अपने जीवन के अंतिम चालीस वर्ष उन्होंने गुजारे। दक्षिण अफ्रीका में टालस्टाय बाड़ी में रहते समय गांधी तथा उनके परिवार का खर्चा उनके जर्मन मित्र श्री केलेनबाख अपने पास से पूरा करते थे। इसी प्रकार भारत में गांधी के आश्रमों का खर्च उनके मित्रों और समर्थकों की सहायता से चलता था।

पंडित मदनमोहन मालवीय को 'गांधी भिखारियों का राजा' कहते थे। गांधी स्वयं भिखारियों के सम्राट थे। सार्वजनिक कार्यों के लिए जनता से धन मांगने में गांधी ने दुनिया में रिकार्ड स्थापित कर दिया था। सार्वजनिक कार्यों के लिए चंदा इकट्ठा करने की अपनी इस अद्भुत क्षमता का ज्ञान उन्हें दक्षिण अफ्रीका में हुआ, जब उन्होंने नेटाल भारतीय कांग्रेस के लिए चंदा उगाहने की जिम्मेदारी संभाली। एक

बार वह एक धनी व्यक्ति के यहाँ गए और उन्होंने उससे अस्सी रुपया चंदा माँगा । लेकिन वह चालीस रुपए से अधिक एक पैसा देने को राजी नहीं होता था । गांधी भूखे और थके हुए थे फिर भी वह हार मानने वाले न थे । वह सारी रात उसके यहाँ बैठे रहे और सुबह अस्सी रुपया चंदा प्राप्त करके ही वहाँ से हटे ।

दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के सत्याग्रह आंदोलन के संघर्ष के दौरान पाँच हजार सत्याग्रहियों तथा उनके परिवारों के लिए धन इकट्ठा करने का मुख्य दायित्व गांधी के ऊपर था । उनके खाने-पीने पर प्रतिदिन तीन हजार दो सौ रुपए का खर्च होता था । गांधी ने तार भेजकर भारत के लोगों से सहायता की माँग की । इसका बहुत अच्छा नतीजा हुआ । भारत के राजाओं और धनी व्यापारियों ने बड़े खुले हाथ से अपने प्रवासी भाइयों के लिए धन भेजा । भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन में जब गांधी के इस आंदोलन के लिए मदद माँगी गई तो लोगों ने नोटों तथा सोने-चाँदी के सिक्कों की वर्षा कर दी ।

गांधी को चंदे में जो कुछ भी मिला उसकी उन्होंने बाकायदा रसीद दी और एक-एक पैसे का ब्योरा भी तफ़सील से भेजा। वह दान देने वालों की मर्जी के खिलाफ उसकी एक पाई भी अन्य कामों पर खर्च नहीं किया करते थे । सार्वजनिक धन को खर्च करने के मामले में वह बहुत सावधानी बरतते थे । 'तिलक-स्वराज्य-कोष' के लिए उन्होंने तीन महीने के अंदर एक करोड़ रुपया इकट्ठा करना तय किया था । एक मित्र ने उनसे अनुरोध किया कि 'यदि आप दस मिनट के लिए भी एक नाटक में उपस्थित होना स्वीकार कर लें तो नाटक में भाग लेने वाले कलाकार पचास हजार रुपए का चंदा दे सकते हैं ।' परंतु गांधी ने यह बात नहीं मानी । फिर भी कोष के लिए शीघ्र ही एक करोड़ पंद्रह लाख रुपए इकट्ठे हो गए । जब 'तिलक-स्वराज्य-कोष' में कुछ लोगों ने हिसाब-किताब में गड़बड़ी होने का आरोप लगाया तो गांधी ने उनसे कहा : "आप खुद आएँ और कोष के हिसाब-किताब की जाँच कर लें ।" गांधी को अमीर, गरीब सभी दान देते थे । पर वह कहा करते थे कि 'अमीरों के हजारों रुपए के दान का मैं हमेशा स्वागत करता हूँ । लेकिन गरीब लोग जो एक रुपए या ताँबे के सिक्के का दान देते हैं, वास्तव में उसी से मेरा काम पूरा होता है । पूरी आस्था से दिया गया ताँबे का एक पैसा वास्तव में दाता द्वारा स्वराज्य लेने का प्रतीक है ।' गरीब बूढ़े जब अपनी अंटी में कस कर बँधे हुए पैसों को निकालने के लिए काँपती उँगलियों से गाँठें खोलते थे, वह दृश्य गांधी को कभी नहीं भूलता था । जिस खुशी से ये गरीब लोग अपनी पसीने की कमाई

को देते, उसे देखकर गांधी बड़े खुश होते थे। तिलक-स्वराज्य-कोष के अलावा उन्होंने शहीद बालिका 'वलिअम्मा' की स्मृति में, गोखले, लाला लाजपत राय, देशबंधु चित्तरंजन दास तथा दीनबंधु एंड्रूज की स्मृति में भी स्मारक-कोषों की स्थापना की और धन इकट्ठा किया। इसी प्रकार 'जलियाँवाला-बाग-स्मारक' के लिए भी उन्होंने चंदा जमा किया। उन्होंने देश के लोगों से कह दिया कि यदि जलियाँवाला-बाग-स्मारक स्थापित करने के लिए आवश्यक धन निर्धारित अवधि के भीतर इकट्ठा नहीं होता तो मैं अपना आश्रम बेच दूँगा और जो धन प्राप्त होगा उसे चंदे में दे दूँगा। देशबंधु-स्मारक के लिए दो महीने के अंदर उन्होंने दस लाख रुपए इकट्ठा कर लिए। जब गांधी को पता चला कि शांति निकेतन के लिए धन संग्रह करने के उद्देश्य से रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने स्वयं अपने नाटकों में भाग लेना शुरू किया है और स्वयं दौरा कर रहे हैं तो उन्होंने वृद्ध कवि को इस प्रकार कष्ट उठाने से रोका और पहली किस्त के रूप में पचास हजार रुपए उन्हें भेंट किए।

जब कभी देश के किसी हिस्से में भूकंप, बाढ़ या अकाल जैसी विपत्ति पड़ती थी तो गांधी पीड़ितों की सेवा के लिए झोली फैलाकर भीख माँगने निकल पड़ते थे। खादी के प्रचार और छुआछूत मिटाने के लिए उन्होंने भारत का तूफानी दौरा किया और रेल के स्टेशनों पर दर्शनार्थी भीड़ से भीख माँगी। हरिजन-सहायता-कोष के लिए उन्होंने दो करोड़ से भी अधिक रुपया एकत्र किया। वह ऐसा दान नहीं लेते थे जिससे लोगों में अकर्मण्यता और मुफ्तखोरी बढ़े। भूखों को भोजन कराने के निमित्त दान को वह नहीं लेते थे। उनका कहना था कि लोगों की भूख एक कौर भोजन की नहीं है, बल्कि इज्जत के साथ अपनी जीविका कमाने की है। वह कहते थे: "मैं भूखे-नंगे लोगों को काम देना चाहता हूँ, जिसकी उन्हें बहुत अधिक आवश्यकता है। उनके आगे रोटी के कुछ टुकड़े फेंक कर या उतारे हुए पुराने कपड़े देकर मैं उनका अपमान करना नहीं चाहता।"

एक बार जेल के एक डाक्टर ने गांधी से पूछा: "क्या आप ऐसा नहीं मानते कि स्वस्थ शरीर वालों को भीख माँगने से रोका जाना चाहिए? क्या आप इस आशय का कानून बनाने के पक्ष में हैं?" गांधी ने उत्तर दिया: "जरूर, लेकिन मेरे जैसे लोगों को भीख माँगने की छूट रहनी चाहिए।"

कहावत है कि भीख में भिखारी का वश नहीं। लेकिन गांधी के भीख माँगने का अंदाज अनोखा था। इस अनोखे भिखारी को भिक्षा देकर लोग अपने को धन्य मानते थे। रेलगाड़ी के डिब्बे में दरवाजे पर खड़े होकर, सभा या मंच पर या चलती हुई

मोटरगाड़ी में खड़े होकर, वह अपनी झोली फैला देते थे। उनकी झोली भरने के लिए लोगों में होड़ लग जाती थी। सैकड़ों बूढ़े और कमजोर ग्रामीण स्त्री-पुरुष अपनी गाढ़ी कमाई का कुछ न कुछ भाग उनके चरणों में चढ़ाने के लिए मीलों पैदल चल कर आते थे। उनका दान भी अजब-अजब होता था। कोई बैंगन और कद्दू लाता था तो कोई अपने खेत में उगने वाली अन्य चीज। एक स्कूल के बच्चों ने एक बार उन्हें अपने हाथ का कता सूत, अपने हाथ से बुनी खादी का एक टुकड़ा और थोड़ा-सा नकद पैसा भेंट किया। इस पैसे को उन्होंने कुछ दिन अपने भोजन में घी, दूध और शक्कर त्याग करके बचाया था। एक बार एक गरीब विधवा ने दो आने पैसे किसी से उधार लेकर गांधी को भेंट किए और कहा कि 'आज मेरे अपने जीवन का यह स्वप्न पूरा हुआ कि जिस महात्मा ने अपना सब कुछ त्याग दिया है, उसे मैं अपनी भीख दे सकूँ।'

गांधी लाउड स्पीकर के जरिए, तार भेजकर और अखबारों में छपवा कर लोगों से दान माँगते थे। लाख रुपए इकट्ठा कर लेना उनके लिए बच्चों का खेल था। एक बार उन्होंने एक पत्रकार के सर से टोपी उतार ली और उसी को अपना भिक्षापात्र बनाया। सबसे पहला शिकार बेचारा वह पत्रकार ही बना और उसे इस विचित्र भिक्षापात्र में ही पैसा डालना पड़ा।

इसी प्रकार भीख माँगते-माँगते जब गांधी बर्मा-यात्रा पर गए तो उन्होंने कहा: "मैं चौदह वर्ष बाद बर्मा आया हूँ। चौदह साल बाद अगर अकाल भी आए तो आप चिंता नहीं करते और बहादुरी से उसका सामना करते हैं। मुझे आशा है कि आप 'दरिद्र-नारायण' के इस प्रतिनिधि को खुश करेंगे। क्योंकि वह शायद आपके बीच आगे फिर कभी न आए।" धनी व्यापारियों ने जब आशा से कम दान दिया तो उन्होंने कहा: "दान के इस चिट्ठे को फाड़ दीजिए और दूसरा बनाइए। मैं अन्य लोगों की अपेक्षा गुजरातियों से ज्यादा चंदा लूँगा। मैं गुजराती चेट्टी हूँ।" इस फटकार का नतीजा यह हुआ कि उसी समय सबने चंदे की रकम दूनी कर दी। श्रीलंका जाने पर उन्होंने लंकावासियों से कहा: "जब महेन्द्र लंका आए थे उस समय भारत के लोग भूखों नहीं मर रहे थे, हमारा सूर्य मध्याह्न पर था और उस गौरव में आप भी हमारे भागीदार थे। यदि आप वह पुराना नाता मानते हैं और उसमें गर्व का अनुभव करते हैं तो आपको केवल रुपए ही नहीं गहने भी देने चाहिएं।" एक बार कच्छ के लोगों ने उनसे कहा: "आप यहाँ जो धन इकट्ठा करें उसका उपयोग कच्छ में ही किया जाए।" इस पर गांधी ने कहा: "यदि आप मुझ पर विश्वास करके अपना पैसा देते हैं तो यह विश्वास भी रखिए कि

मैं यह अच्छी तरह से जानता हूँ कि इसका उपयोग कब और कैसे करना चाहिए।"

एक बार बहुत दुखी होकर उन्होंने कहा था : "मेरे पास हनुमान जैसी ताकत नहीं है कि मैं अपना हृदय चीर कर दिखला सकूँ। यदि मैं ऐसा कर सकता तो आप यही देखते कि उसमें राम के प्रति प्रेम भरा है। वही राम जिन्हें मैं भारत के करोड़ों दीन-दुखियों के रूप में साक्षात देखता हूँ।" वह अकसर एक-एक दिन में दस-दस सभाओं में भाषण करते थे। इन सभाओं में वे कहते : "मुझे एक पैसा दीजिए, दो पैसा दीजिए, जो दे सकते हों दीजिए। एक पाई दे सकें तो वही दीजिए।" अपना अभिनंदन होने पर वह मानपत्र लेने के बाद कहते : "थैली कहाँ है ?" अगर कभी पैसा नहीं मिलता था तो वह कहते : "मैं यहाँ से जाऊँगा नहीं। यहीं बैठा रहूँगा, जब तक कि आप मेरी झोली न भर देंगे।" कभी-कभी लोगों की भीड़ उन्हें मकान, जेवर, चैक, नोट, सोने, चाँदी और ताँबे के सिक्के तथा खद्दर के कपड़े और सूत की लच्छियाँ भेंट करने के लिए धीरज के साथ आधी-आधी रात तक प्रतीक्षा करती रहती थी। गांधी की अठहत्तरवीं वर्ष-गाँठ पर उन्हें सूत की अठहत्तर लाख लच्छियाँ भेंट की गई थीं।

एक बार उन्हें मिले दान में एक कौड़ी भी पाई गई। गांधी के लिए यह कौड़ी त्याग की प्रतीक थी और सोने से भी अधिक कीमती थी। एक हत्यारे को फाँसी की सजा हुई थी। फाँसी पर चढ़ने से पहले उसने आखिरी वसीयत यही की कि उसकी सारी पूंजी—सौ रुपए—राष्ट्रीय कार्य के लिए गांधी को दे दी जाए।

गांधी को सभाओं में जो धन और अन्य वस्तुएँ दान में प्राप्त होती थीं, उन्हें गिनने और ढोने के लिए, आमतौर पर तीन-चार कार्यकर्ताओं की सहायता लेनी पड़ती थी। ऐसी ही एक सभा में एक बार दान की रकम गिनने के बाद एक स्वयंसेवक गांधी के पास आया और उसने ताँबे के सिक्के बटोरते-बटोरते हरी हो गई अपनी हथेली दिखाई। ये सिक्के गरीब लोग जमीन में गाड़कर रखते थे, जिससे वे हरे हो जाते थे। गांधी ने कहा : "यह पुण्य का धन है। यह दान लेनेवाला भी धन्य है और देनेवाला भी। हमारे लिए तो यह न्यौछावर है, मगर यह दान देश के इन दीन-दुखियों के निराशा भरे जीवन में आशा की किरण सरीखा है। उनके लिए यह एक सुनहरे भविष्य का प्रतीक है।"

वैसे गांधी भिखमंगी प्रथा के बड़े खिलाफ थे। काम न करके और हया, शरम छोड़कर रोटी के लिए हाथ फैलाने वाले भिखमंगों से वह बहुत नाराज होते थे। वह कहते थे : "गरीबों को भीख देने की बजाय काम देना चाहिए।" भारत में मुफ्तखोर साधुओं

की संख्या छप्पन लाख से अधिक है । इस पर गांधी बहुत क्षुब्ध थे । शरीर से लाचार और अपंग लोगों को छोड़ किसी भी व्यक्ति का बिना कोई काम किए भीख माँगकर जिन्दगी काटना उनको पसंद नहीं था । भीख माँगना और देना, दोनों को वह गलत मानते थे । हट्टे-कट्टे लोग भीख माँगें इसे वे चोरी करने के समान मानते थे ।

बिहार के भूकंप-पीड़ितों और शिविरों में रहने वाले शरणार्थियों से गांधी कहते थे कि 'अपने लिए खाना और कपड़ा प्राप्त करने के लिए कुछ न कुछ काम जरूर करना चाहिए । वरना आपका आत्मसम्मान मर जाएगा और आपमें दान पर निर्भर रहने की बुरी आदत पैदा हो जाएगी । दान-खैरात पर जीवन बिताना बुरी बात है । गांधी ने कहा था : "आप ईमानदारी से काम कीजिए । मैं नहीं चाहता कि कोई भीख माँगे । आप भीख की बजाय काम माँगिए और उस काम को ईमानदारी से कीजिए । काम करो, काम करो, भीख मत माँगो ।"

डाकू

गांधी अगर भिखारियों के सम्राट थे तो लुटेरों के सरताज राजकुमार भी थे । गांधी ने देखा कि भारत में अमीर लोग दिनों-दिन अमीर होते जाते हैं और गरीब लोग गरीब होते जाते हैं । वह गरीबी-अमीरी की गहरी खाई को पाटना चाहते थे । उनका उद्देश्य था कि ग्राम्य जीवन का पुनर्गठन करके गाँव वालों की दशा सुधारें ।

गरीबों की मदद करने के लिए वह अमीरों को लूटते थे । मगर डाकुओं की तरह बंदूक दिखा कर लोगों को भयभीत करके नहीं, बल्कि प्यार से समझा बुझाकर, नैतिक दबाव डालकर उनका धन लूटते थे । वह धनिकों से उनकी तिजोरी में जमा धन की, पंडितों से उनके ज्ञान की और पूँजीपतियों से उनके मुनाफे में अपने मजदूरों को हिस्सा देने की माँग करते थे । राजाओं से उनका कहना था कि अपनी प्रजा को पूरा हक दो और भीरू एवं काहिल देशवासियों से कहते थे कि अपने आलस्य का त्याग करो, और देश का खून चूसनेवाली सत्ता के हाथ से शासन की बागडोर छीन लो । गांधी के जैसे त्यागी संन्यासी की सच्ची बातों का जादू आबाल, वृद्ध, वनिता, भोले ग्रामवासी और चतुर व्यापारी सब पर छा गया । आँधी की तरह उन्होंने भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक दौरा किया और लोगों को ललकारा कि राष्ट्र की बलि-वेदी पर अपना तन, मन और धन, अपनी संतान सब कुछ न्यौछावर कर दें । उन्होंने लोगों की मोह-निद्रा तोड़ दी । देश सेवा के लिए, लोगों ने उन्हें अपने बच्चे सौंप दिए, पर्दानशीन स्त्रियों ने अपने गहने उतार कर भेंट कर दिए और लोगों ने अपनी पाई-पाई उनको सौंप दी ।

एक बार देश में फसल नष्ट हो गई । किसानों पर बहुत बड़ा संकट आ पड़ा । लेकिन निर्दयी गोरी सरकार ने इस पर भी उनसे पूरा लगान चुकाने को कहा । असहाय किसानों ने लगान वसूल करने वालों के डर के मारे अपने हल-बैल बेचने का विचार किया । लेकिन गांधी ने किसानों से कहा कि सरकार को लगान न दें । किसानों ने लगान देना बंद कर दिया । किसान सत्याग्रहियों के जत्थे ने प्रण किया : "हम सरकार को लगान नहीं देंगे, भले ही हमारी जमीन जब्त कर लो ।" सरकार ने किसानों की जमीनें खड़ी फसल सहित जब्त कर

लीं। गांधी ने उनको समझाया कि आपको अपनी मेहनत का फल भोगने का पूरा हक है और इसलिए जब्त किए गए खेत में से प्याज की फसल को लूट लें। सत्याग्रहियों के एक दल ने खेत में घुसकर सारी प्याज खोद ली। इन सत्याग्रहियों के नेता, मोहनलाल पंड्या गिरफ्तार कर लिए गए। रिहाई के बाद मोहनलाल का शानदार स्वागत हुआ और उन्हें 'प्याज-चोर' की उपाधि मिली। इस सभा के अध्यक्ष गांधी ने मोहनलाल के माथे पर अपने हाथ से विजय-तिलक लगाया।

एक बार अकाल की स्थिति उत्पन्न होने पर गांधी ने किसानों को लगान न देने की सलाह दी। लगान की वसूली में अधिकारियों ने किसानों की जमीन जब्त कर ली। और उन्हें उनके घरों से निकाल दिया। बेचारे किसान बोरिया-बिस्तर बाँधकर, अपने पैतृक घरों को छोड़कर अन्यत्र चले गए। अधिकारियों ने जब्त की हुई भूमि नीलाम करना चाहा, लेकिन उन्हें कोई खरीदार नहीं मिला। अंत में सरकार ने हार मान कर स्थिति की जाँच कराई और बहुत दिनों के बाद किसानों की थोड़ी बहुत माँगें स्वीकार कर ली गईं, और उनका उस साल का लगान माफ कर दिया गया।

बिहार के चंपारन जिले में निलहे गोरे किसानों को जबरदस्ती नील की खेती करने पर मजबूर करते थे और इसकी मजदूरी भी नियमित रूप से नहीं देते थे। वे किसानों से बेगार कराते थे और खुद भारी मुनाफा कमाते थे। चंपारन का एक किसान गांधी के पास गया और उनको दुख गाथा सुनाई। गांधी चंपारन गए, सारे मामले की पूरी-पूरी जाँच की और किसानों की तरफ से उन्होंने न्याय की माँग की। बहुत लिखा पढ़ी और लंबी बातचीत तथा आंदोलन के बाद यह बुरी प्रथा बंद कर दी गई और निलहे गोरों की लूट बंद हुई। चंपारन को एक सौ साल तक निलहे गोरों के जुल्म सहने के बाद मुक्ति मिली।

अंग्रेजों के राज में, भारत की प्रति व्यक्ति औसत दैनिक आमदनी महज एक आना थी। इसको देखते हुए भारत में नमक-कर बहुत ज्यादा था। नमक-रोटी पर गुजारा करने वाले करोड़ों लोगों को यह कर बहुत भारी पड़ता था। भारत के कुछ हिस्सों में नमक चट्टानों से और समुद्र तट से या झील के किनारों से प्राप्त किया जा सकता था। किन्तु नमक बनाना गैर कानूनी था। इसके विरोध में गांधी ने नमक सत्याग्रह छेड़ा। वह इस शोषण को समाप्त करने के लिए कृतसंकल्प थे। समुद्र तट से नमक लेने के लिए उन्होंने दाँडी नामक स्थान पर एक जत्थे के साथ कूच किया। उन्होंने रवाना होने से पहले घोषणा की : "या तो मैं अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त

करके लौटूंगा, अन्यथा मेरी लाश समुद्र में तैरेगी।...हम मारे गए तो स्वर्ग जाएँगे, गिरफ्तार हुए तो जेल जाएँगे और विजयी हुए तो घर लौटेंगे।" अपने आश्रम से चल कर उन्होंने पच्चीस दिन में दो सौ इकतालीस मील का रास्ता पैदल तय किया और दांडी के तट पर नमक-कानून भंग किया। सरोजिनी नायडू ने गांधी को माला पहनाई और तिलक किया। गांधी ने कहा : "मुट्ठी भर नमक उठा लेना तो बच्चों का खेल है। मैं तो सारे नमक पर कब्जा करने जा रहा हूँ।" गांधी के इशारा देते ही भारत भर में लोगों ने कानूम तोड़कर नमक बनाना शुरू कर दिया। पुलिस अवैध नमक के लिए पागलों की तरह तलाशियाँ लेने लगी। पर्दानशीन औरतों के डोले भी गैर कानूनी नमक की खोज में खोल-खोल कर देखे जाते थे। एक बार गांधी मोटर से जा रहे थे। रास्ते में पुलिस सिपाहियों को देखकर उन्होंने पूछा : "मेरे पास गैर कानूनी नमक है। क्या तुम मुझे पकड़ना चाहते हो ?"

गांधी ने धरसाना के सरकारी नमक भंडार पर हमला करने का निश्चय किया लेकिन इससे पहले ही उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। फिर भी नमक के लुटेरों की एक अहिंसक फौज धरसाना पहुँची। पुलिस ने स्वयंसेवकों पर नालबंद लाठियों से बेरहमी से प्रहार किए। बहुतों की हड्डियाँ टूट गईं, कुछ की खोपड़ियाँ टूटीं और खून से धरती लाल हो उठी। भारत के अन्य भागों में भी सरकारी नमक भंडारों पर धावा करके नमक लूटा गया। इस आंदोलन का नतीजा यह हुआ कि एक साल के अंदर ही सरकार को नमक कानून में संशोधन करना पड़ा। घरेलू इस्तेमाल के लिए नमक इकट्ठा करना या बनाना तथा जहाँ नमक के प्राकृतिक भंडार थे उनके नजदीक के गाँवों में नमक की बिक्री की छूट दे दी गई।

ब्रिटिश सरकार को गांधी के रूप में एक ऐसे मजबूत प्रतिद्वन्द्वी से पाला पड़ा जिसने यह सिद्ध कर दिखाया कि धोखेबाजी और छल-प्रपंच की अपेक्षा लूटपाट अच्छी है। अंग्रेज लोग भारत व्यापारियों के रूप में आए थे। उन्होंने धीरे-धीरे भारत के व्यापार पर कब्जा कर लिया और भारत के कपड़ा बनाने के उद्योग को नष्ट कर दिया, जिसकी कभी दुनिया भर में धूम थी। अंग्रेजों ने बुनकरों को अपने हाथ के अँगूठे काट डालने को बाध्य किया। घर-घर में चलने वाले चरखे और करघे बंद हो गए। कुछ बुनकरों ने खेती का धंधा अपनाया और कुछ मजदूरी करके पेट पालने लगे। जिस देश में समृद्धि और खुशहाली थी वहाँ कंगाली का बोलबाला हो गया। लंकाशायर और मेन्चैस्टर का कपड़ा भारत आने लगा और यहाँ से करोड़ों रुपया इग्लैंड पहुँचने लगा।

व्यापारी लोगों की चाँदी हो गई। व्यापारी बन कर आए हुए वे अंग्रेज राजा बन बैठे।

बहुत विचार करने के बाद गांधी ने विदेशी कपड़ा, ब्रिटिश माल और शराब का बहिष्कार करने की योजना बनाई। वह घूम-घूम कर अपने देशवासियों से चरखे पर सूत कातने, हथकरघे पर उसे बुनने और इस प्रकार तैयार खादी का इस्तेमाल करने का आग्रह करने लगे। उन्होंने कताई और बुनाई के उद्योगों को फिर से चालू किया और विदेशी कपड़ा और शराब की दुकानों पर धरना देने के लिए स्त्रियों की स्वयंसेवक टोली सेना तैयार की। उन्होंने गाँव-गाँव और शहर-शहर में सभाओं में भाषण दिए और विदेशी कपड़ों की होली जलाई। इससे विदेशी माल के आयात में बहुत कमी हो गई। अंग्रेजों की कई कपड़ा मिलें बंद हो गई। सूत के गोलों के रूप में गांधी की गोलियाँ की गोलियाँ ब्रिटेन की कपड़ा-मिलों पर चोट लगी। हजारों मजदूर वहाँ बेकार हो गए। बहुत वर्षों बाद जब गांधी इंग्लैंड गए, तब लकाशायर में मिल-मजदूरों के सामने बोलते हुए उन्होंने कहा : "मैं आपकी बेकारी देखकर दुखी हूँ। आपके यहाँ तीस लाख लोग बेरोजगार हैं, हमारे यहाँ तीस करोड़ लोग साल में छः महीने बेरोजगार रहते हैं। यहाँ बेरोजगारों को औसत भत्ता सत्तर शिलिंग मिलता है, जबकि हमारे यहाँ औसत मासिक आय केवल सात शिलिंग छः पैंस है। क्या आप भारतीय कतैयों और बुनकरों तथा भूखे बच्चों के मुँह का कौर छीन कर संपन्न होना चाहते हैं? भारत जब अपनी जरूरत का कपड़ा खुद तैयार कर सकता है तब क्या वह नैतिक रूप से लंकाशायर का कपड़ा खरीदने को बाध्य है? क्या आप करोड़ों गरीब भारतीयों की समाधि पर समृद्ध होना चाहते हैं? उनकी इस स्पष्टोक्ति को ब्रिटिश मजदूरों ने पसंद किया और उन्होंने हर्षध्वनि करके, उनके प्रति अपना आदर व्यक्त किया।

गांधी ने अमीरों और गरीबों के बीच आमदनी और सामाजिक सुविधाओं की चौड़ी खाई को पाटने का अथक प्रयत्न किया। एक बार भंगियों की एक सभा में एक स्त्री ने अपनी कलाई से सोने की चूड़ियाँ निकालकर गांधी को भेंट करते हुए कहा : "आजकल पति लोग अपनी पत्नियों के पास अधिक कुछ छोड़ते ही नहीं। इसलिए मैं हरिजनों की सेवा के लिए यही तुच्छ भेंट दे सकती हूँ। मेरे जेवरों में बस यही बचा है।" गांधी ने उत्तर दिया : "मैं स्वीकार करता हूँ कि मैंने डाक्टरों, वकीलों और व्यापारियों को कंगाल बनाया है। उसका मुझे पछतावा नहीं है। भारत जैसे गरीब देश में जहाँ प्रतिदिन एक पैसे की खातिर लोग मीलों पैदल चलकर जाते हैं, वहाँ कीमती गहने पहनना किसी को शोभा नहीं देता।" दान देते समय अगर किसी स्त्री को कलाई से चूड़ियाँ

उतारने में कठिनाई होती थी तो गांधी चूड़ियों को कटवा देते थे। कुछ लोग गांधी की आलोचना करते थे कि वह औरतों के गहने उतरवा लेते हैं। लेकिन गांधी इस प्रकार की आलोचनाओं की परवाह नहीं करते थे। वह कहते थे: "मैं तो चाहता हूँ कि हमारी सभाओं में आनेवाली हजारों बहनें, अगर सब नहीं तो, अपने अधिकांश गहने उतार कर मुझे दे दें।" उनकी माँग पर हजारों औरतें अपने गहनों का दान करने लगीं। एक युवती विधवा ने गांधी को अपने घर बुलाया और अपने सारे आभूषण उन्हें भेंट कर दिए। एक स्त्री जिसका पति चालीस रुपए मासिक कमाता था, गांधी को अपने घर बुलाकर अपने गहनों की भेंट देना चाहती थी और उन्हें राजी करने के लिए उसने अनशन शुरू कर दिया।

एक सभा में कौमुदी नामक एक किशोरी ने सभा मंच पर जाकर गांधी के सामने अपना सोने का हार, कान की बालियाँ और सोने की चूड़ियाँ उतार कर उन्हें भेंट दीं। गांधी जेवर दान करने वाली बहनों से वायदा कराते थे कि वे नए जेवर न बनवाएँगी। उनका कहना था: "स्त्रियों का सच्चा गहना उनका चरित्र और शुद्धता है।" छोटे बच्चों को भी गांधी नहीं बख्शते थे। एक बार एक छोटी-सी लड़की उनको फूलों की भेंट देने आई। गाधी की पैनी नजर उसकी उँगली में पड़ी अँगूठी पर पड़ी। उन्होंने उसको बहला कर वह अँगूठी दान में ले ली। उन्होंने एक बच्चे के सोने के बटन उतरवा लिए और कहा कि "अब मुझे विधिवत् प्रणाम करो और जाओ, क्योंकि मेरा रक्तचाप इस समय एक सौ पंच्यानवे डिग्री है।" लेकिन अभिभावकों की सहमति के बिना वह किसी बच्चे से उसके गहने कभी नहीं लेते थे।

गांधी अजब लुटेरे थे, जिन लोगों को वह लूटते थे, वे अपने को कृतकृत्य समझते थे। एक भक्त ने गांधी से एक बार कहा: "आप मेरे घर में टिकना स्वीकार करें तो जितनी देर आप ठहरेंगे, मैं प्रति मिनट एक सौ सोलह रुपए के हिसाब से आपको दूंगा।" लेकिन गांधी इतने व्यस्त थे कि उसके यहाँ दो मिनट से ज्यादा नहीं ठहर सके।

एक बार उनके अकस्मात बीमार हो जाने की खबर सुनकर उनके एक डाक्टर मित्र उन्हें देखने को दौड़ आए। गांधी ने उनसे मजाक किया: "मेरी परीक्षा करने की तुम मुझे क्या फीस दोगे?" बजाय खुद कोई फीस पाने के डाक्टर साहब ने एक अन्य मरीज से जो फीस पाई थी, वह सारी की सारी उन्हें जेब से निकाल कर गांधी के हवाले कर दी।

गांधी के आह्वान पर मोतीलाल नेहरू और देशबंधु दास ने अपनी हजारों रुपए की आमदनी की वकालत छोड़ दी और अपनी बड़ी-बड़ी हवेलियाँ राष्ट्र को दान कर दीं। गांधी की पुकार पर हजारों अमीर फकीर हो गए।

कैदी

गांधी को ब्रिटिश सरकार राजद्रोही समझती थी क्योंकि वह भारत को अंग्रेजों की अधीनता से छुड़ाना चाहते थे। उन्होंने ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध सत्याग्रह और असहयोग का आंदोलन छेड़ा, और उन्हें कई बार जेल जाना पड़ा। गिरफ्तार होने पर उन्होंने साफ कहा : "हाँ मैं राजद्रोही हूँ और कड़ी-से-कड़ी सजा के लिए तैयार हूँ।" दक्षिण अफ्रीका में जब उनके ऊपर मुकदमा चलाया गया तो उन्होंने अपनी कोई सफाई नहीं दी और अपने तथा अपने साथियों के ऊपर लगाए अभियोग को स्वीकार कर लिया। जेल की सजा चोर-डाकुओं को दी जाती है, और जेल की तकलीफ, लज्जा और कठिनाइयों से लोग बहुत डरते थे। गांधी ने अपने देशवासियों के दिलों से जेल का डर मिटा दिया।

गांधी को ग्यारह बार जेल में बंद किया गया। एक बार तो उन्हें चार दिन के अंदर तीन बार गिरफ्तार किया गया। उन्हें कुल मिलाकर जितनी कैद की सजा दी गई यदि सब जोड़ी जाए तो ग्यारह साल और उन्नीस दिन होती है। पर कई बार सजा की अवधि पूरी होने से पहले ही उन्हें छूट मिल जाती थी। इस प्रकार उन्होंने कुल मिलाकर छः वर्ष और दस महीने जेल में बिताए। पहली बार जेल जाने के समय गांधी उन्तालीस वर्ष के थे और अंतिम बार जब उन्होंने जेल के फाटक से बाहर पैर रखा उस समय वह पचहत्तर वर्ष के थे।

गांधी दक्षिण अफ्रीका में अपने पाँच सत्याग्रही साथियों के साथ पहली बार जेल गए थे। उन्होंने जेल-जीवन की बड़ी भयंकर कहानियाँ सुन रखी थीं। इससे उन्हें कुछ घबराहट थी। वह यह भी नहीं जानते थे कि उनके साथ राजनैतिक कैदियों जैसा विशेष व्यवहार किया जाएगा या उन्हें अपने साथियों से अलग कर दिया जाएगा। जब अदालत के कटघरे में खड़े हुए तो उन्हें कुछ अटपटा लगा क्योंकि उसी अदालत में वह बैरिस्टर की हैसियत से जाया करते थे। अदालत ने उन्हें दो महीने की सादी कैद की सजा दी। अदालत के बाहर उनके मुकदमे का फैसला सुनने के लिए प्रवासी भारतीयों की बहुत बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गई थी इसलिए सजा सुनाने के बाद गांधी को जल्दी से चुपचाप एक किराए की गाड़ी में

बिठाकर जेल पहुँचा दिया गया। जेल पहुँचने पर गांधी को अपनी उँगलियों के निशान देने पड़े। उन्हें बिलकुल नंगा कर दिया गया। उनका वजन लिया गया और फिर उन्हें जेल के बहुत गंदे कपड़े पहनने को दिए गए। हर दूसरे या तीसरे दिन नए-नए सत्याग्रही जेल में आते रहते थे और शीघ्र ही उनके साथियों की संख्या डेढ़ सौ तक पहुँच गई। इन सभी को एक कमरे में रखा गया जिसमें पचास आदमियों की जगह थी। इसलिए उसमें बड़ी भीड़ हो गई। कुछ कैदियों को रात में सोने की जगह देने के लिए तंबू खड़े किए गए।

जेल के इंस्पैक्टर, गवर्नर और प्रधान पहरेदार दिन में तीन या चार बार जेल का निरीक्षण करते थे। हर बार गांधी तथा अन्य कैदियों को टोपी उतार कर एक लाइन में खड़े होना पड़ता था। गांधी ने अपनी मर्जी से ऐसा काम माँगा जिससे शारीरिक मेहनत हो, मगर उसकी इजाजत नहीं मिली।

भारतीय कैदियों को जेल का भोजन बिलकुल अनुकूल नहीं पड़ता था। सुबह और शाम को उन्हें मक्के की एक प्रकार की लपसी दी जाती थी, जिसमें न चीनी होती थी, न दूध और न घी, और इसे वे लोग खा नहीं पाते थे। किसी-किसी दिन शाम को उन्हें उबली सेम दी जाती थी। नमक को छोड़कर कोई मिर्च-मसाला या चीनी उन्हें नहीं दी जाती थी। गोरे कैदियों को मांस, डबलरोटी और सब्जियाँ मिलती थीं। इन सब्जियों के छिलकों के साथ कुछ और सब्जियाँ मिलाकर जो तरकारी बनाई जाती थी वह काले कैदियों को दी जाती थी। गांधी ने इस भोजन के बारे में एक शिकायत लिखी और उस पर सौ भारतीय कैदियों के हस्ताक्षर करा कर उसे जेल अधिकारियों के सामने पेश किया। इस पर उन्हें उत्तर मिला : "यह भारत नहीं है। यह जेलखाना है और यहाँ स्वादिष्ट भोजन नहीं दिया जा सकता।" लेकिन गांधी की कोशिशों के फलस्वरूप पंद्रह दिन के भीतर भारतीय कैदियों के लिए चावल, रोटी, सब्जी और घी का राशन मंजूर किया गया। उनको खाना खुद ही पकाने की अनुमति भी मिल गई। गाँधी भी खाना बनाने में सहायता करते थे और दोनों वक्त अपने साथियों को खाना परोसते थे। गांधी को उनके साथी गांधी भाई कहते थे, और वे बिना चीनी का अधपका दलिया बिना शिकायत के खा लेते थे। तीसरी बार जब गांधी जेल गए तब उनके भोजन की समस्या नहीं उत्पन्न हुई। उस समय वह फलों पर रहते थे, और उन्हें काफी मात्रा में केला, टमाटर और मेवे मिल जाते थे। गांधी को जेल के कुछ नियम पसद आए और जेल से छूटने के बाद उन्होंने चाय लेनी छोड़ दी और सूर्यास्त से पहले ही भोजन करने लगे।

इसके बाद दक्षिण अफ्रीका में उन्हें दो बार जेल की जो सजाएँ हुईं उनमें उनको बहुत कठिनाइयाँ उठानी पड़ीं। उन्हें सपरिश्रम कैद की सजा दी गई और जिस अदालत में उन्होंने दस वर्ष तक वकालत की थी उसी अदालत से उन्हें हथकड़ी डालकर जेल ले जाया गया। उन्हें नीग्रो और अफ्रीकी कैदियों की पोशाक पहनाई गई। सिर पर एक छोटी फौजी-टोपी, ढीली-ढाली और मोटे कपड़े का कुर्ता जिस पर कैदी नंबर लिखा हुआ था और चौड़े तीरों के चिह्न बने हुए थे, ऊँची पतलून, जिस पर भी नंबर पड़े थे, मोटे मोजे और चमड़े की सैंडिलें—यह थी उनकी जेल की वर्दी। उन्हें तेज बारिश में अपना बिस्तर सिर पर लादे हुए प्रायः मील भर पैदल चलना पड़ा। जेल में उन्हें बहुत ही खूनी नीग्रो और चीनी कैदियों के बीच रखा गया। कुछ जुलू कैदियों ने उन्हें गाली दी और मारा-पीटा। पेशाब-पाखाने के लिए कोई बंद जगह नहीं थी। इन कैदियों के भद्दे चाल-चलन, अश्लील गाली-गलौज और बेहूदगी से गांधी को बड़ी परेशानी हुई। वह उन लोगों की भाषा भी नहीं समझते थे। शीघ्र ही उन्हें चार फुट चौड़ी और छः फुट लंबी एक छोटी-सी कोठरी में अकेले बंद कर दिया गया। हवा के लिए इस कोठरी में छत के निकट एक छोटी-सी खिड़की थी। उन्हें बंद सीखचों के पीछे खड़े-खड़े अपना भोजन करना पड़ता था। प्रतिदिन उन्हें थोड़ा घूमने-फिरने के लिए इस कोठरी से बाहर निकाला जाता था। चावल के साथ घी नहीं दिया जाता था जिसके विरोध में उन्होंने पंद्रह दिन तक चावल नहीं लिया और दिन में एक बार मक्के के दलिए पर ही रहे। इस पर उन्हें घी और डबलरोटी दी जाने लगी। उन्हें एक नारियल की जटा की चटाई, लकड़ी का एक छोटा-सा तकिया, दो कंबल और कुछ किताबें दी गईं। उन्हें रोज केवल एक बाल्टी पानी दिया जाता था। मलमूत्र के लिए एक बड़ा बर्तन रखा था। कैदी पर निगाह रखने के लिए उनकी कोठरी में अंधेरा होने के बाद बिजली का एक छोटा बल्ब जलाकर रखा जाता था। इसकी रोशनी भी इतनी कम थी कि उसमें पढ़ना संभव नहीं था। कभी-कभी मन बहलाने के लिए गांधी अपनी कोठरी में यदि टहलने लगते तो पहरेदार चिल्लाकर डाँटता था : "इस तरह मत टहलो। इससे कमरे का फर्श खराब होता है।" और फर्श भी कोई सोने-चाँदी का नहीं बल्कि रद्दी तारकोल का था।

नहाने की अनुमति माँगने पर पहरेदार गांधी से नंगे होकर गुसलखाने तक जाने को कहता था। गुसलखाना सवा सौ फुट दूर था। इतनी दूर गांधी नंगे नहीं जा सकते थे। आखिर उनकी यह बात मान ली गई कि वह कपड़े पहन कर जाएँ और गुसलखाने में पर्दे पर अपने कपड़े टाँग लें। लेकिन वह अपना बदन ठीक से साफ भी नहीं कर पाते

थे कि पहरेदार आज्ञा देता था : "सैम बाहर निकलो।" अगर निकलने में देर होती तो एक नीग्रो कैदी उनको पीटकर बाहर ढकेल देता था।

जेल में गांधी को नौ घंटे प्रतिदिन काम करना पड़ता था। वह कमीजों के लिए जेबों की कटाई करते थे। फटे हुए कंबलों के टुकड़ों को सिलते थे, वार्निश किए हुए लोहे के दरवाजों पर पालिश करते थे। तीन घंटे तक दरवाजों और फर्श को रगड़-रगड़ कर साफ करने के बाद भी वे ज्यों के त्यों ही रहते थे। गांधी से टट्टियाँ भी साफ करने को कहा जाता था। गांधी स्वयं इन कष्टों को हँस कर झेलते थे, लेकिन जब जेल में उन्हें अपने साथियों के साथ रहने का मौका मिला तो उनकी दशा देखकर उन्हें बहुत व्यथा हुई। जेल के परिश्रम, मशक्कत से तंग आकर कुछ लोग रोने लगते थे और कुछ लोग बेहोश हो जाते थे। गांधी के ही कहने पर ये लोग अपना घर छोड़ कर जेल का दुख भोगते थे। गांधी उनके दुख से बहुत दुखी थे। इस अग्नि-परीक्षा को पार करने पर उनके भाइयों को मुक्ति मिलेगी, इसी विश्वास से उन्हें शांति और बल मिलते थे।

जेल में सुबह छः बजे तक शौच से निवृत्त होकर और हाथ-मुँह धोकर तैयार हो जाना पड़ता था। सात बजे से काम शुरू होता था और सबको नौ घंटे तक कड़ी मेहनत करनी पड़ती थी। सब कैदियों के साथ गांधी एक मील पैदल चल कर जाते थे और उसके बाद उन्हें कड़ी पथरीली भूमि खोदनी पड़ती थी। उनका वजन घट गया। उनकी पीठ और कमर दर्द करने लगती थी। उनकी हथेलियों में छाले पड़ कर फूट गए और फावड़ा पकड़ना भी मुश्किल हो गया था। अगर एक क्षण भी वह दम लेने के लिए हाथ रोकते तो सिपाही डाँटता था। तब गांधी ने सिपाही को चेतावनी दी: "यदि तुम अपना व्यवहार नहीं सुधारोगे तो मैं अपना काम बंद कर दूँगा।" इस धमकी से सिपाही कुछ नरम पड़ा। गांधी ईश्वर से यही प्रार्थना करते थे कि मुझे सौंपे गए काम को पूरा करने की शक्ति दो।

जब गांधी भारत में सरकारी मेहमान बनाकर जेल भेजे गए, तब सरकार उनका सारा खर्च उठाती थी। लेकिन गांधी नहीं चाहते थे कि उनके ऊपर कोई अतिरिक्त खर्च किया जाए। एक बार उन्होंने जेलर से उनके कमरे से सारा असबाब और फालतू बरतन आदि हटा लेने को कहा। वह एक लोहे की खाट और थोड़े से बर्तनों का उपयोग करते थे। वह यह बात कभी नहीं भूल पाते थे कि उनके ऊपर जो खर्च होता था वह सब भारत के करोड़ों भूखे नंगे लोगों से वसूले करों में से आता था। आगा खाँ महल में अपनी अंतिम कैद के बारे में उन्होंने कहा था: "बहुत-से पहरेदारों से घिरे हुए

जिस बड़े महल में मुझे कैद करके रखा गया है, इसे मैं सार्वजनिक धन की बर्बादी मानता हूँ। जब लोग भूखों मर रहे हों, ऐसा करना बहुत बड़ा गुनाह है।"

भारत में गांधी पर चलाया गया मुकदमा एक स्मरणीय घटना है। कटघरे में खड़े इस महान भारतीय को देखकर अंग्रेज सेशन जज ने अपनी कुर्सी पर बैठने से पहले सिर झुकाकर उनका आदर से अभिवादन किया। उसने गांधी को राजद्रोहात्मक कार्रवाइयों के लिए छः साल की सादी कैद की सजा दी। पर अपने फैसले में उसने कहा: "जो लोग आपसे राजनीति में मतभेद रखते हैं, वे भी आपके ऊँचे आदर्श और साधु चरित्र के प्रशंसक हैं।" गांधी ने कहा: "भारत के कुछ बहुत बड़े देशभक्तों को इस धारा के अंतर्गत सजा दी गई है। इस सजा को मैं अपना सौभाग्य मानता हूँ। मैं जानता हूँ कि मैं आग से खेल रहा हूँ। जेल से छूट कर भी वही करूँगा जो अब तक कर रहा हूँ।" गांधी के अदालत में आते और जाते समय वहाँ उपस्थित सारे आदमी उनके सम्मान में खड़े हो जाते थे। पुलिस अपने संदेशों में गांधी के लिए सांकेतिक भाषा में 'बंबई राजनैतिक कैदी नंबर पचास' का प्रयोग करती थी। इस सजा के बाद गांधी का नाम बैरिस्टरों के रजिस्टर से काट दिया गया। जेल में उनकी ऊँचाई तथा शिनाख्ती निशान वगैरह दर्ज किए गए। उन्हें एक कोठरी में अकेले रखा गया। गांधी कोपीन के सिवा कुछ नहीं पहनते थे। फिर भी उनकी नंगा-झोरी ली गई तथा उनके कंबलों को झाड़कर अच्छी तरह तलाशी ली गई। उन्होंने कोई एतराज नहीं किया लेकिन जब उनकी सुराही को जूतों से छूआ गया तब उन्होंने आपत्ति की। कभी-कभी वह जेल के दुर्व्यवहार से तंग आकर भेंट करने वालों से मिलना और पत्र लिखना बंद कर देते थे।

गांधी जेल के कष्टों से नहीं घबड़ाते थे और मन में कटुता नहीं आने देते थे। हर जेल-यात्रा के बाद उनका दिमाग और शांत तथा परिपक्व हो जाता था और चिन्तन-धारा दृढ़ हो जाती थी। गांधी के लिए जेलखाना विश्राम-स्थल के समान था, जहाँ मनुष्य संयम, नियम और सादगी सीखता है और जहाँ अच्छे साथियों की कमी अच्छी पुस्तकों से पूरी होती है। जेल के सींकचे उनके शरीर को बंदी बना सकते थे मगर उनके मन को कोई नहीं। कैद में भी वह आजाद चिड़िया की तरह प्रफुल्लित रहते थे। उन्हें पुस्तकें पढ़ने का बड़ा शौक था, लेकिन जेल के बाहर वह इतने अधिक व्यस्त रहते थे कि पढ़ने के लिए उन्हें समय ही नहीं मिलता था। जेल में वह नियमपूर्वक अध्ययन करते थे। जेल में उन्होंने उर्दू सीखी और संस्कृत, तमिल, हिन्दी, गुजराती तथा अंग्रेजी की बहुत-सी पुस्तकें पढ़ीं। एक बार जेल में उन्होंने दो वर्ष के

अंदर धर्म, साहित्य तथा अन्य विषयों पर विद्वानों की लिखी डेढ़ सौ पुस्तकें पढ़ डालीं। उन्होंने गीता, कुरान, बाइबिल का अध्ययन किया तथा बौद्ध, सिख और पारसी धर्म की पुस्तकें पढ़ीं। उन्होंने रामायण, महाभारत, उपनिषद्, मनुस्मृति तथा पातंजलि के योगदर्शन आदि का अध्ययन किया। पैंसठ वर्ष की अवस्था में जेल के एक साथी से उन्होंने नक्षत्र-विज्ञान का पहला पाठ पढ़ा। उन्होंने जेल अधिकारियों से कहकर एक दूरबीन प्राप्त कर ली और उनकी सहायता से वह खगोल का अध्ययन करते थे।

गांधी जेल में नियमित रूप से प्रतिदिन प्रार्थना किया करते थे, चार से छः घंटे तक चर्खे पर सूत कातते थे और तेज चाल से टहलते थे। आगा खाँ महल में पचहत्तर वर्ष की अवस्था में वह कस्तूरबा और अपनी पौत्री को भूगोल, ज्यामिति, इतिहास, गुजराती व्याकरण और साहित्य पढ़ाते थे। इसके पहले उन्होंने एक चीनी कैदी को अंग्रेजी तथा अपने आइरिश जेलर को गुजराती पढ़ाई। उन्होंने जेल में बच्चों के लिए एक पोथी तथा दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह का इतिहास लिखा। उन्होंने उपनिषदों के सूत्रों और संत कवियों के कुछ भजनों का अंग्रेजी में अनुवाद किया और यह संकलन 'सांग्स फ्रॉम दि प्रिजन' नाम से प्रकाशित हुआ। उन्होंने जेल से अपने आश्रमवासियों, 'साथी' कार्यकर्ताओं, जेल अधिकारियों, लाट साहब, बड़े लाट साहब बहादुर और ब्रिटिश प्रधान मंत्रियों को सैकड़ों पत्र लिखे। हर सप्ताह वह आश्रम के बच्चों को इस तरह के सुन्दर पत्र लिखा करते थे, "अगर तुम बिना पंख के उड़ना सीख लो तो तुम्हारी सारी कठिनाई रफू हो जाए। मेरे पंख नहीं हैं फिर भी मन से रोज तुम्हारे पास उड़कर आता हूँ। कभी नन्हीं विमला के पास तो कभी छोटे हरी के पास।"

गांधी ने जेल के नियमित जीवन के लाभों का अपने लेख में वर्णन किया और यह बताया कि एक आदर्श कैदी को कैसा व्यवहार करना चाहिए। वह चाहते थे कि कैदियों को जो काम दिया जाए उसे करें और जेल के नियमों का पालन करें बशर्ते यह नैतिकता के विरुद्ध न हो। कैदियों को भूख हड़ताल तभी करनी चाहिए, जब उनको अपमानित किया जाए या गंदा भोजन दिया जाए। गांधी और उनके साथियों ने अपमानजनक नियमों का पालन कभी नहीं किया। वे जेल के अधिकारियों के सामने न तो कभी उकड़ूँ होकर बैठे और न उन्होंने 'सरकार सलाम' ही कहा।

गांधी ने यह स्वीकार किया कि स्वराज्य के बाद भी देश में जेलखाने रहेंगे। पर वह जेलखानों को सुधारगृह और कारखानों का रूप देना चाहते थे। उन्हें ऐसे विद्यालयों का रूप देना चाहते थे जहाँ भटके और गुमराहों को शिक्षा दी जाए। एक बार जेल में

रहते हुए उन्होंने बताया कि किस प्रकार कैदियों से उपयोगी काम लिया जा सकता है और जेलों को आत्म-निर्भर बनाया जा सकता है। मगर जेल अधिकारी भला किसी कैदी की बात को मानने के लिए कैसे तैयार होते!

यह आदर्श कैदी कभी-कभी जेल-अधिकारियों के लिए बड़ी मुसीबत भी खड़ी कर देता था। जब उन्हें डबलरोटी खाने की अनुमति दे दी गई तो उन्होंने काटने के लिए एक छुरी माँगी क्योंकि वह बिना सेंकी हुई रोटी नहीं खा सकते थे। उन्होंने टहलने के लिए ज्यादा जगह की माँग की। वह अपने जेल के साथियों की देखभाल और फिकर करते थे। वह दमे के रोगी और ऐसे रोगियों का जो प्राकृतिक चिकित्सा या आयुर्वेदिक चिकित्सा कराना चाहते थे, खुद इलाज करना चाहते थे और इसके लिए विशेष सुविधाएँ माँगते थे। वह जेल अधिकारियों से अपनी माँगें स्वीकार कराने के लिए लंबे उपवास करते थे। जब उनकी तबियत ज्यादा खराब हो जाती तो जेल अधिकारी उनको रिहा कर देते थे। सरकार महात्मा गांधी जैसे विश्वविख्यात व्यक्ति के जीवन को लेकर कोई जोखिम उठाने को तैयार नहीं थी। जब जेल में गांधी को अपेंडिसाइटिस हो गई तो सरकार को बड़ी चिन्ता हुई, और तुरंत उनका आपरेशन करवाया गया। वह अपने जेल-जीवन में दो बार बीमार पड़े थे।

जेल में गांधी के साथ उनके सहयोगियों और उनके घर के लोगों को अकसर रखा जाता था। आगा खाँ महल में कस्तूरबा और गांधी के सचिव महादेव देसाई को गांधी के साथ ही रखा गया था। इन दोनों की वहीं मृत्यु हुई और उनका दाह संस्कार जेल के अंदर ही किया गया। उनकी मृत्यु पर गांधी ने कहा: "इन दोनों ने 'करेंगे या मरेंगे' के मंत्र का पालन करते हुए स्वतंत्रता की वेदी पर प्राणों की बलि दी। वे अमर हो गए हैं।"

सेनापति

दक्षिण अफ्रीका ने गांधी को शक्तिशाली पुरुष बना दिया। तेईस वर्ष की उम्र में वह डर्बन पहुँचे थे। इससे पहले वह बड़े शर्मीले और संकोची थे। दक्षिण अफ्रीका की भूमि पर पैर रखने के साथ ही उन्होंने देखा कि भारतीयों को और काले लोगों को गोरे लोग कितनी नीची निगाह से देखते हैं। भारतीयों को वहाँ के गोरे 'कुली' कहते थे।

डर्बन पहुँचने के तीसरे दिन ही जब गांधी अदालत में गए तो मजिस्ट्रेट ने उनको अपनी पगड़ी उतारने को कहा क्योंकि यह अदालत के कानून के खिलाफ था। गांधी को यह बहुत चुभा। उन्होंने इसे मानने से इंकार कर दिया और अदालत से चले गए।

इसके एक सप्ताह बाद उन्हें ट्रेन से एक दूसरे शहर जाना था। उन्होंने पहले दर्जे का टिकट खरीदा और ट्रेन के पहले दर्जे के डिब्बे में जाकर बैठ गए। अगले स्टेशन पर टिकट चेकर आया और उन्हें पहले दर्जे से उतर कर तीसरे दर्जे के डिब्बे में जाकर बैठने को कहा। गांधी ने कहा कि उनके पास पहले दर्जे का टिकट है और उन्हें पहले दर्जे में सफर करने का हक है। इस पर उसने उन्हें जबरदस्ती घसीट कर डिब्बे से बाहर निकाल दिया। गांधी तीसरे दर्जे में नहीं गए और गाड़ी चली गई। वह उस स्टेशन के प्रतीक्षालय में गए। रात का समय था और कमरे में अँधेरा था। अपमान से उनका जी जल रहा था। वह सोचने लगे कि क्या करना चाहिए। जहाँ भारतीयों के साथ इतना बुरा व्यवहार किया जाता है, उस देश को छोड़कर चला जाऊँ या वहाँ रह कर अपने अधिकार के लिए लड़ूँ? यह उनका नहीं बल्कि उनके देश के सम्मान का प्रश्न था। अंत में उन्होंने यही निश्चय किया कि यहीं रहकर अपनी कौम के अधिकारों के लिए लड़ूं। इस रात ने गांधी के भावी जीवन की दिशा निश्चित कर दी।

गांधी को अपनी यात्रा की दूसरी मंजिल घोड़ागाड़ी से तय करनी थी। उन्हें बग्घी के अंदर बैठने नहीं दिया गया। वह बग्घी के कोचवान की बगल में बैठे। थोड़ी देर बाद एक गोरे यात्री ने उनसे कहा कि सीट छोड़कर नीचे पाँवदान पर बिछे बोरे के ऊपर बैठो। गांधी ने अपनी सीट छोड़कर नीचे बैठने से इंकार कर दिया।

इस पर उन्हें बहुत बुरी तरह पीटा गया। शहर में पहुँच कर गांधी ने एक होटल में कमरा लेना चाहा। किन्तु 'गोरे होटल' में उन्हें ठहरने की जगह न मिल सकी। उन्होंने वह रात एक भारतीय मित्र की दुकान में गुजारी। इस मित्र ने सारी बात सुनकर सहानुभूति प्रकट की, लेकिन इस पर उसे तनिक भी आश्चर्य या क्षोभ नहीं हुआ। ऐसी घटनाएँ तो उस देश में रोज ही होती रहती थीं। वहाँ के रहने वाले भारतीय इस प्रकार के दुर्व्यवहार के अभ्यस्त हो गए थे। वे तो दक्षिण अफ्रीका में रुपया कमाने के लिए आते थे और मान-सम्मान की परवाह नहीं करते थे। गांधी भारतीयों की इस कायरता से बहुत ही विस्मित और दुखी हुए। उन्होंने इस घटना की शिकायत अखबारों को, रेलवे अधिकारियों को और घोड़ा-गाड़ी कंपनी के अधिकारियों को लिखकर भेजी।

कुछ ही दिनों के अंदर गांधी को यह भी पता चल गया कि भारतीयों को सड़क की पटरी (फुटपाथ) पर चलने की अनुमति नहीं है, वे रात के नौ बजे के बाद घर से बाहर नहीं चल सकते। ट्रामगाड़ी की आगे की सीटों पर नहीं बैठ सकते। भारतीयों के रहने के लिए अलग खुली बस्तियाँ थीं। गांधी को एक बार एक पहरेदार ने धक्का मारकर पटरी से नीचे धकेल दिया था। गोरे उन्हें 'कुली बैरिस्टर' कहते थे। गांधी के कुछ गोरे मित्र उनको कुछ विशेष सुविधाएँ दिलाना चाहते थे, लेकिन गांधी ने इंकार कर दिया। वह सिर्फ अपने लिए खास सुविधाएँ लेने को तैयार नहीं थे। वह तो रंग-भेद को खत्म करना चाहते थे जिससे सभी काले लोगों के साथ बराबरी का बर्ताव हो। अपमान और दुर्व्यवहार से दबते नहीं थे और न उन्होंने अपराधियों पर मुकदमा चलाने या उन्हें सजा दिलाने की कोशिश की।

यहाँ के रहने वाले प्रत्येक भारतीय को तथा दक्षिण अफ्रीका में रहने वाले भारतीय प्रवासियों को जो कष्ट और रोक थी उसके बारे में गांधी ने पूरी सूचनाएँ एकत्र कीं। एक सप्ताह के भीतर उन्होंने भारतीयों की एक सभा बुलाई और हर भारतीय से अनुरोध किया कि आप अपने जीवन का ढर्रा बदलें, ईमानदार बनें, सफाई की आदत डालें तथा जाति-धर्म और प्रांतीयता के भेदों को भुलाकर एक हो जाएँ। उन्होंने गोरों को एक भी गाली नहीं दी। वह चाहते थे कि उनके देशवासी यह समझ लें कि हमारा रहन-सहन ठीक रहेगा तो हम अपने लिए मानवी अधिकारों की माँग कर सकेंगे। वह भारतीयों से बराबर मिलते-जुलते और उनकी दुःख-दर्द की बातें धीरज के साथ सुनते और समझते रहे।

वहाँ के भारतीयों को जो भी थोड़ा-बहुत मताधिकार मिला हुआ था उसे भी छीन लेने के लिए वहाँ की सरकार ने लगभग एक वर्ष बाद एक कानून पेश किया। गांधी ने

भारतीयों को इस कानून का विरोध करने को कहा । उन्होंने स्वयंसेवकों का दल बनाया और ईसाई नवयुवकों, मुसलमान और पारसी व्यापारियों तथा हिन्दुओं को इस बात के लिए तैयार किया कि वे सब मिलकर भारतीयों के साथ होने वाले अन्याय का विरोध करें। गांधी ने एक विरोध-पत्र तैयार किया। कुछ उत्साही भारतीयों ने उसकी प्रतिलिपियाँ तैयार कीं, कुछ ने धन दिया और कुछ ने इसे दूर-दूर के क्षेत्रों में रहने वाले भारतीयों तक पहुँचाया। एक महीने के अंदर आंदोलन के लिए एक कोष जमा कर लिया गया और दस हजार लोगों ने इस विरोध-पत्र पर हस्ताक्षर किए। इस विरोध-पत्र की छपी हुई प्रतियाँ नेटाल के गवर्नर और प्रधानमंत्री को, भारत के बड़े लाट को, महारानी विक्टोरिया को, तथा नेटाल, भारत और इंग्लैंड के अखबारों को भेजी गई । दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों के साथ अन्याय की चर्चा दूर-दूर तक हुई । यद्यपि इस आंदोलन का तत्काल कोई नतीजा नहीं निकला और इस सबके बावजूद उक्त कानून बन गया। लेकिन भारतीयों ने पहली बार अपनी उदासीनता और दब्बूपन छोड़कर अन्यायी सरकार की सत्ता को चुनौती देना सीखा । इसलिए उन्होंने नेटाल इंडियन कांग्रेस की स्थापना की, उसके नियम बनाए और सदस्यों को भर्ती किया और घर-घर जाकर चंदा इकट्ठा किया ।

दक्षिण अफ्रीका में बीस वर्ष तक रहकर गांधी ने इसी प्रकार के कानूनों का विरोध करने में अपने देशवासियों का नेतृत्व किया। एक कानून था जिसके अंतर्गत प्रत्येक वयस्क भारतीय को चालीस रुपए वार्षिक कर अदा करना पड़ता था । दूसरे कानून के अनुसार भारत में हुए भारतीयों के विवाह नाजायज करार दे दिए गए । भारतीयों का यह घोर अपमान था। एक और कानून के अंतर्गत प्रत्येक भारतीय को हमेशा अपने पास अपनी दसों उँगलियों के निशान वाला एक प्रमाणपत्र रखना पड़ता था। उँगलियों के निशान आमतौर पर मुजरिमों के ही लिए जाते थे । गांधी ने इन कानूनों के विरुद्ध सैकड़ों पत्र लिखकर भेजे, बीसियों अधिकारियों के पास अर्जियाँ भेजीं, खुद जाकर भी उनसे मिले। अखबारों में लेख लिखे, सभाएँ कीं। जब इनसे कोई असर नहीं पड़ा तब उन्होंने सत्याग्रह—अन्याय का अहिंसात्मक प्रतिरोध— का नया शस्त्र ईजाद किया ।

गांधी ने भारतीयों से कहा कि आप लंबी लड़ाई के लिए तैयार हो जाएँ और उँगलियों की छाप देने से इंकार कर दें, सरकार जो दंड दे उसे भुगतें, जेल जाएँ, जरूरत हो तो जान दे दें, लेकिन इस कानून के आगे सर न झुकाएँ । गांधी ने कहा : "आप मृत्यु का भय छोड़ दें और अन्याय को समाप्त करने के लिए जो भी कष्ट आपके ऊपर आएँ, उनको खुशी-खुशी सहन करें । उन्होंने स्पष्ट तौर पर अपने देशवासियों

को चेताया कि आप मेरे ऊपर निर्भर न रहें बल्कि मैंने जो कार्यक्रम बताया है उसे भली भाँति समझ कर उस पर अमल करें। इसी से हम अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकेंगे। गांधी के निर्देशों को हिन्दी, गुजराती, और तमिल भाषा में लोगों को अच्छी तरह समझा दिया गया। गांधी की अहिंसक-सेना ने पूरी तरह अहिंसा का पालन करते हुए अन्याय से लड़ने का व्रत लिया। अशिक्षित मजदूर, कारीगर, खान-मजदूर, फेरीवाले, दूकानदार, व्यापारी और स्त्रियाँ भी—सभी इस सेना में शामिल हुए। गांधी ने पाँच हजार निहत्थे और शांतिपूर्ण अनुशासित सत्याग्रहियों की टोली को लेकर पैदल कूच किया। इस दल के साथ वह भी पैदल चलते थे, खुले आकाश के नीचे सोते थे और उनके साथ पानी जैसी पतली दाल और अधपका भात खाते थे। वह बीमारों की सेवा करते थे, थके-हारे पिछड़े हुए साथियों का उत्साह बढ़ाते थे, सबके लिए भोजन पकाने और परोसने में हाथ बँटाते थे। उनके मनोबल के समान ही उनका शारीरिक बल भी कभी कमजोर नहीं पड़ा। इन पाँच हजार सत्याग्रहियों में से ढाई हजार को सरकार ने कठोर श्रम के साथ कैद की सजा दी। एक हजार सत्याग्रही बिलकुल बर्बाद हो गए और कुछ लोग मरे भी। जो व्यापारी अमीरी और आराम के अभ्यस्त थे, उन्होंने अपने नेता गांधी के साथ जेल में पत्थर तोड़े और पाखाने साफ किए। कस्तूरबा भी सत्याग्रह में शामिल हुईं और उन्हें भी जेल की सजा दी गई।

इंग्लैंड में गांधी के आंदोलन के प्रति सहानुभूति प्रकट की गई। भारत में कांग्रेस के अधिवेशन में दक्षिण अफ्रीका की समस्या पर विचार किया गया। कांग्रेस के अध्यक्ष सर वेडरवर्न नामक अंग्रेज ने कहा: "दक्षिण अफ्रीका की ताजा खबरों से साफ जाहिर हो गया है कि हिन्दू और मुसलमान मिलकर लड़ें तो उनकी जीत अवश्य होगी। गांधी के कुशल नेतृत्व में भारतीय जो आंदोलन चला रहे हैं, उसके लिए मैं उन्हें साधुवाद देता हूँ।" गांधी के नेतृत्व में सत्याग्रहियों का जो बड़ा जत्था कूच कर रहा था उसका खर्च पूरा करने के लिए रोज तीन हजार दो सौ रुपए की जरूरत थी। भारत में धन के लिए अपील निकाली गई। औरतों ने अपनी सोने की चूड़ियाँ और कान की बालियाँ दे दीं, धनवानों ने हजारों रुपयों का दान किया। कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भिक्षा की झोली लेकर चंदा जमा करके गांधी को भेजा। अंत में यह लंबी और कठिन लड़ाई खत्म हुई और भारतीयों के अनुकूल एक समझौता हुआ। आत्म-सम्मान पर आँच न आती हो, ऐसे समझौते के लिए गांधी हमेशा तैयार रहते थे।

गांधी जब स्वदेश लौटे, उस समय भारत में बहुत से बड़े नेता मौजूद थे।

फिर भी देश के दुखी मजदूर, किसान और जनता मदद के लिए दक्षिण अफ्रीका के यशस्वी सेनानी गांधी के ही पास आई। गांधी की कोशिशों से बिहार में सौ वर्ष से चली आ रही नील की मजबूरन खेती की प्रथा खत्म हुई और गिरमिटिया या शर्तबंद मजदूरों को विदेशों में भेजना रोक दिया गया। अगर किसी क्षेत्र में लोगों को कोई अन्याय की शिकायत होती तो गांधी उसे दूर करने के लिए लोगों को स्वयं प्रयत्न करने को कहते थे। गांधी ने इस प्रकार अन्याय और जबरदस्ती के विरुद्ध जो भी आंदोलन किए, उसकी प्रतिध्वनि सारे भारत में हुई।

भारत में गांधी ने जो भी जन-आंदोलन चलाया, उन सबमें उनका तरीका एक ही था——शांति और दृढ़ता से अपनी बात कहना और उसके लिए अहिंसात्मक आंदोलन करना। चंपारन, खेड़ा, और बारडोली के प्रसिद्ध आंदोलनों के अलावा उन्होंने तीस वर्षों में भारत में चार बड़े आंदोलनों का नेतृत्व किया। उन्होंने पूरे भारत का दौरा किया और जाने के पहले लोगों से मिलकर अपनी आँखों से उनकी दशा देखी और उनकी समस्याओं को समझा।

जब भी वह सरकार के खिलाफ कोई आंदोलन छेड़ते, वह हजारों व्यक्तियों से भेंट करते थे और सारी सूचनाएँ और तथ्य एकत्र करने के लिए रोजाना अठारह-बीस घंटे काम करते थे। उन्होंने हजारों सभाओं में भाषण दिए और लोगों को अनुशासन का पाठ पढ़ाया। गांधी ने लोगों को अहिंसा का महत्त्व समझाया। उन्होंने कहा: "देश के सामने एक दूसरा रास्ता भी है——तलवार खींच कर लड़ना। यदि यह तरीका संभव होता तो भारत के लोग अहिंसा के संदेश को नहीं सुनते। सिर्फ भाषणों और जुलूसों से हमें स्वराज्य नहीं प्राप्त होगा, उसके लिए हमें काम हासिल करने की शक्ति और दृढ़ता दिखानी होगी। हमें ऐसे वीर सैनिक बनना होगा जो मैदान छोड़कर भागते नहीं। हमें अपने प्राणों का बलिदान करने को तैयार रहना होगा। स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए मर्दानगी जरूरी है। मारने के बजाय जरूरत हो तो खुद मर जाइए। आखिर किसी को मारने के लिए भी तो मरने की जोखिम उठानी पड़ती है, तो किसी की जान बचाने के लिए अपनी जान जोखिम में डालना कठिन क्यों लगे? दूसरों की जान लेने में बहादुरी नहीं है। बहादुरी है अपने सम्मान और स्वतंत्रता के लिए मरने में।"

गांधी की अहिंसक सेना में स्त्री, बच्चे और बूढ़े भी शामिल थे। बच्चों की सेना वानर-सेना कहलाती थी। गांधी अहिंसा पर इतने दृढ़ थे कि आंदोलन में कहीं भी हिंसा हो जाने पर अपने सत्याग्रह को वापस ले लेते थे। वह छिपी लड़ाई नहीं, खुली लड़ाई

लड़ते थे और डंके की चोट घोषित कर देते थे कि वह क्या करने जा रहे हैं। वह अपने अनुयायियों से आशा करते थे कि अपने मन से भय, क्रोध, घृणा और प्रतिशोध की भावना को निकाल दें।

गांधी लोगों को झूठी आशा कभी नहीं बँधाते थे। अपने सैनिकों को बता देते थे कि 'आपको लाठियों और गोलियों का सामना करना पड़ेगा, जेल जाना होगा, आपकी संपत्ति जब्त हो सकती है और आपको फाँसी पर भी चढ़ना पड़ सकता है। यह सब शांत भाव से बिना विरोध किए सहना होगा।' उनके मंत्र 'करेंगे या मरेंगे' का अर्थ था 'कष्टों को सहन करना' और वह जानते थे कि कष्टों के सहने से विरोधी हृदय पिघलेगा।

गांधी ने जहाँ लोगों से विदेशी कपड़ों को जलाने, लगान न देने, नमक बनाने और कानून तोड़ने तथा सरकारी विद्यालयों, पाठशालाओं और अदालतों का बहिष्कार करने को कहा, वहीं उन्होंने लोगों से रचनात्मक कार्य करने को भी कहा। वह चाहते थे कि लोग चरखा चलाएँ, कपड़ा बुनें, गाँव के धंधों को जिलाएँ, गाँव पंचायतों को पुनर्जीवित करें, छूआछूत छोड़ें और राष्ट्रीय विद्यालय और कालेजों की स्थापना करें। उन्होंने कहा था कि इस कार्यक्रम से हम एक वर्ष के अंदर स्वराज्य प्राप्त कर लेंगे। यह लक्ष्य अवश्य पूरा नहीं हुआ। लेकिन लोगों के मन से गुलामी की भावना और डर छूट गया। देश की जनता जाग उठी। गांधी की दांडी यात्रा का चमत्कारी प्रभाव हुआ। स्त्रियाँ भी नमक बनाने के लिए पर्दा छोड़कर बाहर आ गईं और उन्होंने पुरुषों के कंधे से कंधा भिड़ाकर देश की सेवा में हँसते-हँसते लाठी, गोली और जेल के कष्ट झेले।

गांधी अपनी अहिंसा की लड़ाई में युद्ध की भाषा का प्रयोग करते थे: "मैं युद्ध के लिए तैयार हूँ। जैसे अफ्रीदी योद्धा बंदूक के बिना नहीं रह सकता वैसे ही चरखा, तकली के बिना अहिंसा के सैनिकों का काम नहीं चलना चाहिए। सूत की गुच्छियाँ आपके कारतूस हैं, चरखा आपकी बंदूक है। स्वतंत्रता की रक्षा बंदूकों से नहीं बल्कि चरखे से होगी।...आप धरमाना नमक के डिपू पर आक्रमण करेंगे। यह लड़ाई 'धरसाना की लड़ाई' के नाम से प्रसिद्ध होगी।" गांधी की लड़ाई में तोप, बंदूक और बम का कोई स्थान नहीं था। उनके सैनिकों के हथियार थे—वीरता, देशभक्ति, सहनशक्ति और आत्मत्याग।

गांधी कायरता की अपेक्षा हिंसा को अच्छा मानते थे लेकिन वह पशु-बल की तुलना में आत्म-बल को ज्यादा महत्त्व देते थे। "क्या परमाणु-बम ने अहिंसा में आपके विश्वास को डिगा नहीं दिया है?" इस प्रश्न का उत्तर गांधी ने दिया: "उसने मेरा विश्वास डिगाया नहीं है बल्कि उसे बढ़ा दिया है और स्पष्ट रूप से यह सिद्ध कर दिया

है कि सत्य और अहिंसा संसार की सबसे प्रबल शक्ति है। इसके सामने परमाणु बम नहीं टिक सकता।" वह कहते थे कि भारत ने यदि अहिंसा से स्वतंत्रता प्राप्त कर ली तो संसार की सभी शोषित जातियाँ समझ जाएँगी कि उनकी आजादी दूर नहीं है ।

लेखक

गांधी ने बहुत लिखा है और उन्हें बहुत उच्च कोटि का लेखक माना जाता है। अपने लेखों में से बहुतों को गांधी ने पुस्तक का रूप नहीं दिया। ये या तो सत्य, अहिंसा, स्वदेशी और चरखा पर लिखे गए लेख थे या महिलाओं, विद्यार्थियों या राजाओं को दिए गए अभिभाषणों के संकलन थे। वह बड़ी नपी-तुली भाषा में अपनी बात कहते थे। वह लच्छेदार शब्दों के पीछे कभी नहीं जाते थे। उनका उद्देश्य लोगों को चमत्कृत करना नहीं, उनसे अपने दिल की बात कहना था। उनकी एक सीधी-सादी किन्तु निराली शैली थी, जिसमें वह अपने हृदय को उड़ेल कर रख देते थे और जो दिल को छू लेती थी। उनकी भाषा बहुत सरल और अर्थ बिल्कुल स्पष्ट होता था। उनकी भाषा उतनी ही सरल व सहज थी जितना कि उनका जीवन था। कई अंग्रेज लाटों ने यह स्वीकार किया है कि गांधी अपनी बात बहुत सीधे ढंग से कहते थे। उसमें घुमाव-फिराव नहीं होता था और वह इतनी अच्छी अंग्रेजी में अपने विचार प्रकट करते थे जिसमें हर शब्द का चुनाव बहुत अच्छा होता था। गांधी का कहना था कि मैं बिना सोचे-विचारे एक शब्द भी नहीं लिखता या बोलता। आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के एक प्राध्यापक ने जिन्होंने लंदन में गोलमेज सम्मेलन में गांधी के कुछ वक्तव्यों का मसविदा तैयार करने में उनकी मदद की थी, कहा था : "अंग्रेजी के अव्यय (उपसर्ग) का प्रयोग गांधी जितना सही करते थे उतना सही करने वाला आज तक मुझे कोई भारतीय नहीं मिला। मैं मसविदा तैयार करने में बहुत मेहनत करता था। गांधी मेरे मसविदे पर एक नजर डालते थे और एक दो अव्यय बदल देते थे। इससे मानो चमत्कार हो जाता था और मेरी बात गांधी की बात बन जाती थी।"

अंग्रेजी भाषा के अच्छे लेखकों की पुस्तकों और बाइबिल को उन्होंने बहुत ध्यानपूर्वक पढ़ा था और शायद इसीसे उन्होंने शब्दों के सही चुनाव करने की कला सीखी थी। उन्होंने विविध विषयों की पुस्तकें पढ़ी थीं और जो कुछ पढ़ा था उसे गुना भी था।

लेखक के रूप में उनका प्रथम प्रयास 'लंदन गाइड' नामक पुस्तिका थी जो उन्होंने

भारतीय छात्रों के लिए लिखी थी। उस समय वह तरुण ही थे। इस पुस्तिका में लंदन के बारे में उपयोगी सूचनाएँ दी गई थीं। इसके बाद उन्होंने दो छोटी पुस्तिकाएँ लिखीं-- 'ऐन अपील टु एवरी ब्रिटन' और 'दि इंडियन फ्रेंचाइज़'। पहली पुस्तिका में नेटाल में भारतीयों की दशा और दूसरी पुस्तक में वहाँ के भारतीयों के मताधिकार का इतिहास दिया गया था। इसके बाद उन्होंने 'ग्रीन पैम्फलेट' (हरी पुस्तिका) लिखी जिसकी भाषा सरकारी रिपोर्टों की तरह तथ्यात्मक थी। इसके प्रकाशन के एक महीने बाद उन्होंने इसका दूसरा संशोधित संस्करण प्रकाशित किया। इस पुस्तिका का सारांश जब दक्षिण अफ्रीका के अखबारों में छपा तो पढ़कर वहाँ के यूरोपीय लोग बहुत ही चिढ़ गए। नतीजा यह हुआ कि जब इसके बाद गांधी भारत से वापस दक्षिण अफ्रीका पहुँचे तो क्रुद्ध गोरों ने उन्हें घेर लिया और उनकी जान लेने की कोशिश की। गांधी को यह कटु अनुभव हुआ कि उनकी लिखी चीजों के भाव को संक्षेप में ठीक से व्यक्त नहीं किया जा सकता। उनको यह कमाल हासिल था कि वह अपनी बात कम-से-कम शब्दों में, पर प्रभावशाली ढंग से कह सकते थे। कांग्रेस के संविधान और कांग्रेस के अनेक प्रस्तावों का मसविदा उन्हीं का तैयार किया हुआ है।

भोजन के संबध में अपने प्रयोगों को गांधी ने 'ए गाइड टु हेल्थ' नामक पुस्तक के रूप मे प्रकाशित किया। यह पुस्तक गुजराती 'इंडियन ओपीनियन' में छपे उनके मूल गुजराती लेखों का अंग्रेजी में अनुवाद थी। इस पुस्तक का अन्य कई यूरोपीय और भारतीय भाषाओं में भी अनुवाद हुआ और भारत में तथा विदेशों में इसे खूब पढ़ा गया।

उनके दिमाग में जब कोई विचार जम जाता था तब वह पूरे विश्वास के साथ उसको लिपिबद्ध करते थे और इस बात से बिलकुल नहीं डरते थे कि लोग उन पर हँसेंगे। जब उन्हें लिखने की धुन होती थी तब वह चलती हुई रेलगाड़ी और पानी में हिलते जहाज पर भी लिखते थे। पूरी की पूरी 'हरी पुस्तिका' उन्होंने सन् १८९६ में समुद्री जहाज में भारत की यात्रा के समय लिख डाली थी। इसी प्रकार सन् १९०९ में इंग्लैंड से दक्षिण अफ्रीका जाते हुए जहाज पर उन्होंने 'हिन्द स्वराज' नामक पुस्तक लिखी थी, जिसमें आधुनिक सभ्यता की बड़ी कटु आलोचना की गई है। इस पुस्तक को उन्होंने जहाज का नाम छपे कागज पर लिखा था। लिखते-लिखते जब उनका दायाँ हाथ थक जाता था, तब वह बाएँ हाथ से लिखने लगते थे और इस प्रकार उन्होंने दस दिन के अंदर यह पुस्तक लिख डाली। इस पुस्तक को पढ़कर टाल्स्टाय ने कहा था, 'इसमें अहिंसक संघर्ष का प्रश्न केवल भारत के लिए ही नहीं, सारे संसार के लिए बहुत महत्त्व-

पूर्ण है ।' राष्ट्र निर्माण कार्य के विषय पर 'कंस्ट्रक्टिव प्रोग्राम' नामक पुस्तिका उन्होंने रेल-गाड़ी में यात्रा करते समय लिखी थी । वह जो कुछ लिखते थे उसमें काटकूट बहुत कम होती थी और उसमें बाद में शायद ही कभी किसी परिवर्तन की जरूरत होती थी । इसका कारण गांधी के शब्दों में 'सत्य के एक पुजारी का आत्मसंयम' था अर्थात् एक-एक शब्द को तौल कर कहने की आदत के कारण ऐसा लेख लिखना संभव हो सका ।

किसी विचार का एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करते हुए बिल्कुल उपयुक्त शब्दों का चुनाव करने की उनमें अद्भुत क्षमता थी । वह शाब्दिक अनुवाद नहीं करते थे बल्कि उसी भाव का शब्द और मुहावरा रखते थे । अंग्रेजी के शब्द 'डेथ डांस' का अनुवाद उन्होंने 'पतंग नृत्य' किया । रस्किन लिखित 'अनटु दिस लास्ट' नामक पुस्तक पढ़कर गांधी को लगा कि उसमें उनके हृदय के विचारों की प्रतिध्वनि है । वह उन्हें इतनी अच्छी लगी कि उन्होंने गुजराती में उसका अनुवाद कर डाला । यह 'सर्वोदय' के नाम से प्रकाशित हुआ । गांधी ने कार्लाइल की कुछ रचनाओं के अंश और मुस्तफा कमाल पाशा की जीवनी के कुछ अंश भी अंग्रेजी से गुजराती में अनुवाद करके छापे । गांधी की लिखी 'स्टोरी ऑफ ए सत्याग्रही' प्लेटो रचित 'डिफेंस एण्ड डेथ ऑफ साक्रेटीज' (सुकरात का मुक-दमा) पर आधारित है । गांधी जब जेल में थे तब उन्होंने आश्रम भजनावली और भारत के कुछ संत कवियों की रचनाओं का अंग्रेजी में अनुवाद किया था । इन कवियों की रचना 'सांग्स फ्रॉम द प्रिज़न' नाम से प्रकाशित हुई ।

गांधी ने अपनी आत्मकथा गुजराती में लिखी । इससे गुजराती भाषा में एक नया युग शुरू हुआ । इसकी भाषा ऐसी सरल और दिल को छूने वाली है जिसने गुजराती के लेखकों पर बड़ा प्रभाव डाला और पंडितों की मंडली से निकलकर गुजराती भाषा जनता की भाषा बन गई । इस आत्मकथा के अंग्रेजी अनुवाद को विद्वानों ने एक उच्च कोटि की साहित्यिक रचना माना है । यह आत्मकथा न केवल संसार के एक महापुरुष के मानवीय व्यक्तित्व की जीती-जागती झाँकी है बल्कि इसमें उन्होंने अपने माता-पिता, पत्नी और इष्ट मित्रों के मर्मस्पर्शी चित्र खींचे हैं और रोचक संवादों और नाटकीय घटनाओं का ऐसा वर्णन किया है कि पाठक की उत्सुकता अंत तक बनी रहती है और पुस्तक उपन्यास की तरह रोचक लगती है । इस पुस्तक का भारतीय भाषाओं के अलावा अंग्रेजी, फ्रेंच, रूसी, जर्मनी, चीनी तथा जापानी भाषाओं में भी अनुवाद हुआ है और इसकी लाखों प्रतियाँ बिक चुकी हैं । इसकी गिनती संसार की श्रेष्ठतम आत्मकथाओं में है ।

गांधी के सभी लेखों में सत्य और उच्च नैतिक आदर्शों पर जोर दिया गया है ।

लेकिन इस कारण ऐसा नहीं लगता कि कोई आदमी ऊँचे आसन पर बैठ कर उपदेश दे रहा है, क्योंकि वे अपने अनुभव की बात कहते थे। उन्होंने बच्चों के लिए एक 'बाल पोथी' लिखी और 'नीति धर्म' नामक एक पुस्तक की रचना की। वह बच्चों को किसी ऐसी बात का उपदेश नहीं देना चाहते थे, जिसका प्रयोग बच्चे अपने जीवन में न कर सकें। गांधी जेल से आश्रम के बच्चों को जो पत्र लिखते थे वे मजेदार होने के साथ ही शिक्षाप्रद भी होते थे। गांधी पत्र बहुत लिखते थे और एक-एक दिन में अपने हाथ से पचास-पचास पत्र तक लिख डालते थे। उनके लगभग एक लाख पत्रों के संकलन का उनकी रचनाओं में विशिष्ट स्थान है।

गांधी 'कला के लिए कला' के सिद्धांत को नहीं मानते थे। उनके लिए सच्ची कला वही है जो सत्य पर आधारित हो और केवल उसी साहित्य का कुछ मूल्य है जो मनुष्य को ऊँचा उठाने में मदद करे। भारत के करोड़ों भूखे-नंगे इंसानों के लिए वह सरल और अच्छी कहानियाँ तथा ऐसे पद और दोहे चाहते थे जिन्हें खेतों में हल चलाते हुए किसान अपने बैलों को हाँकते समय आनंद से झूमते हुए गा सकें और गंदी गालियाँ बकना भूल जाएँ। एक बार साहित्यकारों के एक सम्मेलन में उन्होंने कहा था : "क्या आपने कभी इन करोड़ों मूक लोगों की माँग और आशाओं पर भी ध्यान दिया है? आखिर किन लोगों की खातिर आप साहित्य रचते हैं। मैं उन लोगों को क्या पढ़कर सुनाऊँ?" उन्होंने अच्छे लेखन के एक आदर्श नमूने के रूप में डीन फरार रचित ईसा मसीह की जीवनी का दृष्टांत दिया जो ऐसी सरल और सुबोध भाषा में लिखी गई है जिसे इंग्लैंड का सर्व-साधारण समझ सकता है। गांधी ने 'इंडियन ओपीनियन' के गुजराती संस्करण में कई विशिष्ट पुरुषों और स्त्रियों के रेखाचित्र लिखे। एक बार उनसे उनके प्रिय कवि और दार्शनिक रायचंद भाई की जीवनी लिखने का अनुरोध किया गया। गांधी ने कहा : "उनकी जीवनी लिखने के लिए मुझे बहुत तैयारी करनी होगी। उनके घर और नगर को देखना होगा और उनके मित्रों, सहपाठियों, संबंधियों और अनुयायियों से मिलना होगा।" इससे पता चलता है कि लिखने में गांधी तथ्यों का कितना ध्यान रखते थे।

गांधी लिखने और बोलने में अकसर महाभारत, रामायण, राम, कृष्ण, मुहम्मद और ईसा की कथाओं से दृष्टांत दिया करते थे। इससे उनकी बात साधारण लोगों को बहुत अच्छी तरह समझ में आ जाती थी। गांधी की वाणी और लेखनी में जनता के हृदय को स्पर्श करने की जो अद्भुत शक्ति थी उसका यही मूल था। बुरी बातों की निन्दा करने में गांधी कभी कसर नहीं रखते थे। चाहे गोरे लोग काले लोगों पर अत्या-

चार करें या गुंडागीरी करें, चाहे सवर्ण लोग अंत्यजों पर अत्याचार करें या स्वार्थी कांग्रेसी सदस्य सफेद खद्दरधारी गुंडे हो जाएँ, सब पर गांधी की कलम चाबुक की तरह पड़ती थी। इस संबंध में जो बातें उन्होंने कहीं थीं उनमें से बहुत-सी आज सच साबित हो रही हैं। भारत के एक बड़े लाट लार्ड कर्जन ने एक बार कह दिया कि 'सत्य का आदर्श बहुत हद तक पश्चिम की कल्पना है।' इसके विरोध में गांधी ने रामायण, महाभारत, वेदों आदि के उदाहरण देकर यह सिद्ध किया कि भारत में सत्य का पालन अत्यंत प्राचीन काल से होता आ रहा है, और लार्ड कर्जन से कहा कि भारत के ऊपर जो निराधार अपमानजनक लांछन लगाने की आपने कोशिश की है उसे वापस लें। गांधी ने एक बार कहा था: "हजरत मुहम्मद और उनका शांति का संदेश अब कहाँ है? यदि आज मुहम्मद साहब भारत आएँ तो अपने बहुत से तथाकथित अनुयायियों की हरकतों को देखकर वह कह देंगे कि ये मेरे नहीं और मुझे अपना सच्चा अनुयायी मानेंगे। वैसे ही ईसा मसीह भी मुझे अपना असली ईसाई स्वीकार करेंगे। पश्चिम में ईसाइयत है ही नहीं; होती तो वहाँ युद्ध न होते।"

गांधी कहा करते थे: "कवि तो अपने कल्पना लोक में रहता है, लेकिन मैं तो चरखे का दास हूँ, मैं स्वप्नलोक में नहीं, भूख और अभाव की दुनिया में रहता हूँ।" लेकिन गांधी के लेखों में ऐसे बहुत से अंश हैं जिनमें कवित्व छलकता है। गांधी में कुछ ऐसी साहित्यिक प्रतिभा थी जिससे चंद शब्दों में ही वह जीता-जागता चित्र खींच देते थे। जैसे:

"मैसूर के एक प्राचीन मंदिर में मैंने एक छोटी-सी मूर्ति देखी थी। यह मूर्ति जैसे मुझसे बोल रही थी। एक अर्द्धनग्न स्त्री की मूर्ति, जो कामबाण से विद्ध होकर छटपटा रही थी और अपने वस्त्रों से उलझ रही थी। उसके पैरों पर मृत बिच्छू पड़ा था, जो पराजित कामदेव का प्रतीक था। उसकी अंगभंगी से काम-वेदना, बिच्छू की दंश जैसी यातना, साफ-साफ साकार हो उठी थी।"

"क्या आपने उड़ीसा में नर कंकालों को देखा है? नर कंकालों के इस भूखे, नंगे और गरीब प्रदेश में ऐसे शिल्पी हुए हैं, जिन्होंने हड्डी, सींग और चाँदी की चीजों में चमत्कार भर दिया है। जाइए और जाकर देखिए कि एक दुबले-पतले व्यक्ति की आत्मा भी किस प्रकार निर्जीव सींग और धातुओं में जीवन फूँक सकती है। देखिए एक गरीब कुम्हार ने मिट्टी से क्या चमत्कार पैदा कर दिखाया है!"

"वह स्थान एक नदी के तट पर था। वृक्षों और झाड़ियों से ढकी छोटी-छोटी

पहाड़ियों के बीच से नदी बहती थी। नदी की तलहटी बलुई थी, चिकनी मिट्टी की नहीं। मच नदी के जल पर बना था। मंच के सामने की सड़क के दोनों ओर बारह हजार से अधिक नर-नारी बिल्कुल शांत बैठे थे।"

"सवेरे तड़के मैंने मलाबार में प्रवेश किया। परिचित स्थानों से गुजरते हुए, अचानक मेरी आँखों के सामने एक 'नयाड़ी' चेहरा उभर आया जिसे मैंने अपनी पिछली यात्रा के समय देखा था। अस्पृश्यता पर बातचीत हो रही थी कि तेज आवाज सुनाई पड़ी। जो लोग मुझसे बात कर रहे थे, उन्होंने कहा : 'हम आपको एक जीता-जागता नयाड़ी दिखाएँगे।' सार्वजनिक सड़क उसके लिए नहीं थी। नंगे पाँव दबा-दबा वह खेत पर चल रहा था। मैंने उसे पास बुलाया। घबराता और काँपता हुआ वह आया। मैंने उसे बताया कि मेरी तरह ही तुम्हें भी आम सड़क पर चलने का अधिकार है। उसने कहा : 'ऐसा नहीं हो सकता। मैं सड़क पर नहीं चल सकता।' आप मुझे अपने साथ हँसते और हँसी-मजाक करते देख रहे हैं, लेकिन आप यह जान लें कि इस हँसी-मजाक में भी उस दीन नयाड़ी का चेहरा मुझे नहीं भूलता। मलाबार की पूरी यात्रा में यह याद मुझे सताती रहेगी।"

My dear Jawaharlal,

You must not be stunned. Rather be joyful that God gives strength & direction to do my duty. I could not do otherwise. As the author of non-co-operation, a heavy responsibility lies on my shoulders. [illegible] writing your impressions of Lucknow & Cawnpore. Let me drink the cup to the full. I am quite at peace with myself.

19/9/24

Yours sincerely
M K Gandhi

गांधी की हस्तलिपि : दाएँ हाथ से
(साभार : जवाहरलाल नेहरू संग्रहालय)

My dear Jawahar

We are living in strange times. Sitla Sahai ~~must~~ may defend himself. ~~Have you seen him?~~ Please keep me informed of further developments. What is he? Is he a lawyer? Had he ever any connection with revolutionary activity?

As for the Congress, it would be better to make it as simple as possible so as to enable the present remaining workers to cope with it and I know that your burden will be now increased.

But you
healthy self in
com un
I do not
without
I wish
and ke

3

I want your mental peace. I know that you will serve the country even as manager of a business. I am sure that Father will not mind any decision you may arrive at so long as it gives you complete peace.

Yours
Bapu

30 9/25

I see that I must reserve the right hand for N.J.

गांधी की हस्तलिपि : बाएँ हाथ से
(साभार : जवाहरलाल नेहरू संग्रहालय)

पत्रकार

उन्नीस वर्ष की अवस्था में गांधी बैरिस्टरी पढ़ने के लिए इंग्लैंड गए। वहाँ पहुँचने के बाद वह नियमित रूप से अखबार पढ़ने लगे। देश में जब वह स्कूल में पढ़ते थे, तब कभी अखबार नहीं पढ़ते थे। वह बहुत ही शर्मीले स्वभाव के थे और चार लोगों के बीच में बोल नहीं सकते थे। इक्कीस साल की उम्र में उन्होंने 'दि वेजिटेरियन' नामक एक अंग्रेजी साप्ताहिक पत्र के लिए शाकाहार, भारतीय खान-पान, रीति-रिवाज, धार्मिक उत्सवों आदि के बारे में नौ लेख लिखे। यह उनका पहला लेखन प्रयास था। उनके आरंभिक लेखों में भी अपने विचारों को सरल और सीधी भाषा में व्यक्त करने की विशेषता दिखलाई पड़ती है।

इसके बाद दो वर्ष तक उनकी लेखनी शांत रही, और फिर जब जाग उठी तो अंत तक अबाध गति से चलती रही। वह लोगों को केवल चमत्कृत करने की इच्छा से कुछ भी नहीं लिखते थे और अपने लेखों में अतिरंजना कभी नहीं करते थे। वह जो भी लिखते सत्य के लिए, लोगों को शिक्षा देने के लिए और अपने देश की हित-साधना के लिए ही लिखते थे।

पहली बार दक्षिण अफ्रीका में पहुँचने के तीसरे ही दिन उन्हें एक अदालत में अपमानित किया गया। उन्होंने इस घटना का हाल लिखकर एक स्थानीय अखबार में प्रकाशित कराया। और इस साहस या दुस्साहस से वह एक दिन में मशहूर हो गए क्योंकि प्रवासी भारतीय और अफ्रीकी लोग गोरों से अपमान सहने के इतने आदि हो गए थे कि प्रतिवाद या विरोध की बात तो सोच ही नहीं सकते थे।

पैंतीस वर्ष की अवस्था में उन्होंने 'इंडियन ओपीनियन' नामक साप्ताहिक पत्र निकाला और उसके जरिए दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों का संगठन किया। इस पत्र का एक गुजराती संस्करण भी 'फीनिक्स' में छापा जाता था। गुजराती संस्करण में उन्होंने आहार के संबंध में एक लेख-माला लिखी और महान स्त्री-पुरुषों के जीवन-चरित्र भी छापे। इन दोनों साप्ताहिक पत्रों के प्रत्येक अंक में गांधी के लेख अवश्य होते थे।

इसका एक अलग संपादक तो था, लेकिन सारा भार गांधी स्वयं उठाते थे। वह जनता का विवेक जगाना चाहते थे, गोरों तथा भारतीयों के बीच की गलतफहमियों को दूर करना चाहते थे, और अपने देशवासियों को उनकी कमजोरियाँ बताना चाहते थे। वह 'इंडियन ओपीनियन' के स्तंभों में अपना दिल उड़ेल देते थे। दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के सत्याग्रह का विस्तृत विवरण उन्होंने उसमें प्रकाशित किया। उनके लेखों से विदेशों के लोगों को दक्षिण अफ्रीका की घटनाओं के बारे में सही बात मालूम होती थी। 'इंडियन ओपीनियन' के विशिष्ट पाठकों में भारत में श्री गोखले, इंग्लैंड में दादा भाई नौरोजी और रूस में टाल्स्टाय प्रमुख थे। दस वर्षों तक गांधी ने इस पत्रिका के लिए कठिन परिश्रम किया। 'इंडियन ओपीनियन' के बदले में उनके पास दो सौ पत्र-पत्रिकाएं आती थीं। वह इन सबों को ध्यानपूर्वक पढ़ते थे और उनमें से ऐसे समाचार छाँट कर अपनी पत्रिका में छापते थे जिनसे 'इंडियन ओपीनियन' के पाठकों को लाभ हो।

गांधी जानते थे कि समाचार-पत्र विचारों के प्रचार के कितने शक्तिशाली माध्यम हैं। वह सफल पत्रकार थे, किन्तु पत्रकारिता को जीविका का साधन बनाने का उनका इरादा कभी नहीं रहा। उनकी राय थी कि पत्रकारिता का उद्देश्य सेवा है; स्वार्थ-सिद्धि के लिए या जीविका चलाने के लिए पत्रकारिता का दुरुपयोग कभी नहीं करना चाहिए। और संपादकों या अखबार को चाहे जो भी संकट झेलना पड़े, उनके परिणाम की परवाह किए बिना अपने देश की बात कहनी चाहिए। जनता के दिलों को छूने के लिए संपादक को नए ढंग की लेखनी अपनानी पड़ेगी।

'इंडियन ओपीनियन' का भार जब गांधी ने सँभाला, वह घाटे में चल रहा था और उसके सिर्फ चार सौ ग्राहक थे। कई महीनों तक गांधी को उसमें अपनी जेब से हर महीने बारह सौ रुपए लगाने पड़े। कुल मिलाकर इसमें उन्होंने छब्बीस हजार रुपए का नुकसान उठाया। इस भारी नुकसान के बावजूद उन्होंने अखबार में अपने विचारों के लिए ज्यादा जगह देने के विचार से बाद में यह निश्चय किया कि उसमें कोई विज्ञापन न लिया जाए। वह जानते थे कि यदि अखबार में विज्ञापन लेंगे तो वह न सत्य की सेवा कर सकेंगे और न स्वतंत्र रह सकेंगे। उन्होंने न तो अन्य अखबारों के साथ प्रतियोगिता करने की कोशिश की और न वह अनुचित उपायों से अपने अखबारों की बिक्री बढाने की इच्छा रखते थे।

भारत में भी उन्होंने इसी परंपरा का पालन किया और तीस वर्षों तक एक भी विज्ञापन लिए बिना अपने अखबार निकाले। वह कहते थे कि प्रत्येक प्रांत के लिए

विज्ञापन के प्रकाशन का एक ही माध्यम होना चाहिए जिनमें जनता के लिए उपयोगी वस्तुओं का सीधा-सादा वर्णन छपे, अतिशयोक्ति या झूठी प्रशंसा बिल्कुल न की जाए। 'यंग-इंडिया' का संपादक-पद स्वीकार करने के बाद वह एक गुजराती पत्र प्रकाशित करने को बहुत उत्सुक थे। वह देशी भाषा में अखबार निकालना चाहते थे। अंग्रेजी भाषा के अखबार का संपादन करने में उनको कोई बहुत आनंद नहीं आता था। उन्होंने 'यंग इंडिया' के गुजराती और हिन्दी संस्करण 'नवजीवन' के नाम से निकाले और इनके लिए वह नियमित रूप से लेख लिखते थे। वह गर्व के साथ कहा करते थे कि 'नवजीवन' के बहुत से पाठक किसान और श्रमिक हैं, जिनमें सच्चा भारत मूर्तिमान है।

काम का भारी बोझ होने के बावजूद उन्हें अपने पत्रों के लिए बहुत ज्यादा लिखना पड़ता था, और अकसर उन्हें बहुत रात तक या सवेरे तड़के उठकर काम करना पड़ता था। वह चलती हुई रेलगाड़ी में भी लिखते थे। उनके कुछ प्रसिद्ध वक्तव्यों या लेखों के ऊपर 'ट्रेन पर' लिखा होता था। जब उनका दाहिना हाथ थक जाता था तब वह बाएँ हाथ से लिखने लगते थे। उनकी बाएँ हाथ की लिखावट ज्यादा साफ होती थी। बीमारी के बाद स्वास्थ्य लाभ करते समय भी वह प्रति सप्ताह तीन या चार लेख लिखते थे।

विज्ञापन न लेने पर भी भारत में उन्होंने कोई पत्र घाटे पर नहीं चलाया। अंग्रेजी, गुजराती तथा हिन्दी के उनके पत्रों की ग्राहक संख्या चालीस हजार तक पहुँच गई थी। जब वह कैद हो गए तो यह संख्या घटकर तीन हजार हो गई। भारत में पहली बार जेल होने के बाद जब वह छूटे तो उन्होंने अपनी पत्रिकाओं में अपनी आत्म-कथा धारावाहिक रूप में प्रकाशित करना शुरू किया। यह तीन वर्षों तक छपती रही और इसने संसार भर के लोगों को आकृष्ट किया। उन्होंने लगभग सभी भारतीय पत्रों को अपनी आत्मकथा को उद्धृत करने की अनुमति दे दी। जेल में रहते हुए उन्होंने 'हरिजन' नामक एक नया साप्ताहिक पत्र आरंभ किया। 'यंग इंडिया' की भाँति इसका मूल्य भी एक आना था। वह मुख्य रूप से अस्पृश्यों की सेवा करने के उद्देश्य से निकाला गया था। कई साल तक इस पत्र में राजनीति विषयक एक भी लेख नहीं छपा। सबसे पहले इसे हिन्दी में निकाला गया। सरकार ने गांधी को इस पत्र के लिए कैदखाने से हफ्ते में तीन लेख भेजने की अनुमति दे दी थी। इस पत्रिका का अंग्रेजी संस्करण निकालने के बारे में गांधी ने एक मित्र को लिखा: "मैं आपको सावधान करना चाहता हूँ कि जब तक अंग्रेजी संस्करण की छपाई आदि सुंदर न हों, इसमें पठनीय सामग्री न हो, और लेखों के अनुवाद सही न हों तब

तक इसका अंग्रेजी संस्करण न निकालें । जैसे-तैसे संपादित अंग्रेजी साप्ताहिक निकालने के बजाय केवल हिन्दी संस्करण से ही संतुष्ट रहना ज्यादा अच्छा होगा । यह भी स्पष्ट कर दूँ कि मैं इस पत्र को घाटा देकर नहीं चलाऊँगा।" उन्होंने तीन महीने तक प्रयोग के तौर पर आरंभ में इसकी दस हजार प्रतियाँ छापने का निश्चय किया। लेकिन दो महीने में यह पत्र आत्मनिर्भर हो गया । बाद में यह बहुत ही लोकप्रिय विचारपत्र बन गया । लोग इसे दिल बहलाव के लिए नहीं, लाभ उठाने के ख्याल से पढ़ते थे। यह पत्र अंग्रेजी, हिन्दी, उर्दू, तमिल, तेलुगु, उड़िया, मराठी, गुजराती, कन्नड़ और बंगला भाषाओं में छपता था। गांधी इसके लिए हिन्दी, उर्दू, गुजराती और अंग्रेजी में लेख लिखते थे।

गांधी की पत्रिकाओं में कभी सनसनीदार सामग्री नहीं छापी जाती थी । लगातार वह रचनात्मक कार्य, सत्याग्रह, अहिंसा, स्वास्थ्यकर आहार, प्राकृतिक चिकित्सा, हिन्दू-मुसलमान एकता, अस्पृश्यता, कताई, खादी, स्वदेशी, ग्रामोद्योग और नशाबंदी आदि विषयों पर इन पत्रिकाओं में लेख लिखते थे । वह शिक्षा पद्धति तथा भोजन की आदतों में सुधार पर बहुत जोर देते थे और राष्ट्रीय बुराइयों के बहुत कठोर आलोचक थे ।

वह अपने सहायकों से बहुत सख्त काम लेते थे । उनके सचिव महादेव देसाई को एक बार रेलयात्रा में डिब्बे के शौचालय में बैठ कर लेख पूरा करना पड़ा था। गांधी के सहायकों को रेलगाड़ियों के पहुँचने, छूटने तथा डाक निकलने आदि के समय की पूरी और सही जानकारी रखनी पड़ती थी ताकि प्रकाशन के लिए तैयार सामग्री को वक्त से डाक में छोड़ा जा सके। एक बार गांधी जिस ट्रेन से यात्रा कर रहे थे वह लेट चल रही थी और उस ट्रेन पर गांधी ने जो लेख लिखे थे, उन्हें समय से डाक से भेजने की गुंजाइश नहीं थी । इसलिए उन अंग्रेजी के लेखों को अहमदाबाद स्थित अपने प्रेस में डाक से भेजने के बजाय गांधी ने उन्हें एक आदमी के हाथ सीधे बंबई भेजा। वहाँ छपकर वह अंक समय पर प्रकाशित हुआ।

'यंग इंडिया' में छपे अपने कुछ साहसपूर्ण लेखों के कारण ही उन्हें जेल जाना पड़ा। उन्होंने अखबारों का गला घोंटने वाले किसी सरकारी आदेश को कभी स्वीकार नहीं किया। जब सरकार ने उनके विचार प्रकट करने पर रोक लगाई तो उन्होंने पत्रों का छापना बंद कर दिया। उन्हें विश्वास था कि उनके हजारों पाठक कहने भर से उनके लेखों की हाथ से नकल तैयार करके हाथों-हाथ चारों ओर वितरित कर देंगे । वह छापाखाने पर इतने निर्भर नहीं थे कि उसके बगैर अखबार निकालना असंभव मानें । वह जानते थे कि आवश्यकता के समय हाथ से नकलें तैयार करके अखबार निकाला जा सकता है ।

सन १९१९ में गांधी ने सरकारी आदेश को न मानकर 'सत्याग्रह' नामक एक साप्ताहिक पत्र बिना सरकार से रजिस्ट्री कराए प्रकाशित किया था। इस एक पन्ना के साप्ताहिक पत्र का मूल्य एक पैसा था।

स्वयं बरसों तक पत्रकारिता का अनुभव रखने के कारण गांधी को पत्रकारिता के आदर्श पर बोलने का हक था: "पत्रकार एक चलती-फिरती महामारी बन गए हैं। अखबार बड़ी तेजी से लोगों के लिए बाइबिल, कुरान और गीता के समान महत्त्वपूर्ण बनते जा रहे हैं। एक अखबार में भविष्यवाणी की गई है कि दंगे होने वाले हैं और दिल्ली की सारी लाठियाँ और छुरे लोगों ने खरीद डाले हैं। पत्रकार का कर्तव्य लोगों को बहादुरी सिखाना है, उनको डराना नहीं।"

मुद्रक और प्रकाशक

गांधी जितने कुशल संपादक थे उतने ही कुशल मुद्रक और प्रकाशक भी थे। गांधी अपने 'इंडियन ओपीनियन', 'यंग इंडिया', 'नवजीवन', और 'हरिजन' नाम के पत्रों का संपादन भी करते थे और इनको अपने ही प्रेस में छापते थे और प्रकाशित करते थे। वह जानते थे कि यदि वह अपने पत्रों को दूसरे प्रेसों में छपवाएँगे तो अपने विचारों को स्वतंत्रतापूर्वक व्यक्त नहीं कर पाएँगे। जब उन्होंने 'इंडियन ओपीनियन' का भार सँभाला, उस समय वह घाटे में चल रहा था। गांधी प्रेस को शहर से हटाकर फीनिक्स बस्ती में ले जाना चाहते थे। उनके मित्रों को शंका थी कि प्रेस दूर गाँव में न चल सकेगा। फिर भी गांधी ने पूरी मशीन का सारा टाइप और असबाब आदि को शहर से हटाकर आश्रम में एक कमरे में करीने से लगा दिया। मशीन को चलाने के लिए तेल से चलने वाला एक पुराना इंजन लगाया गया। अपना कार्यालय गांधी ने एक अलग कमरे में बनवाया। इस छापेखाने में एक भी वेतनभोगी कर्मचारी या चपरासी नहीं रखा गया। 'इंडियन ओपीनियन' साप्ताहिक पत्र था। वह छपकर शनिवार को बँटने के लिए भेजा जाता था। शुक्रवार तक दोपहर को सारे लेख आदि कंपोज हो जाते थे। सभी आश्रमवासी, बच्चे-बूढ़े मैटर कंपोज करने, छापने, अखबार के छपे हुए कागजों को काटने और मोड़ कर तह करने, अखबारों के रैपर पर पते लिखने और बाहर भेजने के लिए अखबारों का बंडल बाँधने के कामों में सहायता करते थे। इन बंडलों को समय पर रेलवे स्टेशन पहुँचाना जरूरी था। समय पर अखबार तैयार कर देने के लिए लोग आधी रात तक काम करते थे। जब काम ज्यादा होता था, तब अन्य लोगों के साथ गांधी भी शुक्रवार की पूरी रात जागते थे। कभी-कभी कस्तूरबा और आश्रम की अन्य स्त्रियाँ भी उनकी मदद करती थीं।

फीनिक्स बस्ती में प्रेस लगाने के बाद, पहली ही रात को जब मशीन पर 'इंडियन ओपीनियन' के फार्म छप रहे थे तब तेल का इंजन अचानक रुक गया। गांधी तथा अन्य लोगों ने छपाई मशीन को हाथ से चलाकर पत्र को समय पर छापकर

तैयार कर दिया। इस प्रकार से गांधी को छपाई और प्रेस का काम सीखने में बड़ी मदद मिली। गांधी अखबार के लिए लेख लिखते थे, कंपोज करते थे, प्रूफ देखते और फिर मशीन पर छपाई करने में भी हाथ बँटाते थे। आश्रम के कई लड़के छपाई का काम सीखने लगे। एक बार 'इंडियन ओपीनियन' के एक अंक की छपाई और प्रकाशन का सारा काम अकेले इन लड़कों ने ही किया। आरंभ में 'इंडियन ओपीनियन' चार भाषाओं में निकलता था—अंग्रेजी, हिन्दी, गुजराती और तमिल। बाद में कंपोजीटरों के और संपादकों के अभाव में उसे केवल अंग्रेजी और गुजराती, दो भाषाओं में ही छापा जाने लगा। भारत लौटने पर गांधी एक बार मद्रास गए। जहाँ अड्डयार नामक स्थान पर थियोसॉफिकल सोसायटी का मुख्य केन्द्र और प्रेस आदि था। श्रीमती एनी बेसेंट ने देखा कि गांधी एक विशेषज्ञ की पैनी और पारखी निगाहों से वहाँ के प्रेस में छपाई आदि के काम का निरीक्षण कर रहे हैं।

प्रेस और नवजीवन प्रेस में अंग्रेजी, हिन्दी तथा अन्य भाषाओं की अनेक पुस्तकें भी छपीं। गांधी अपनी रचनाओं से होने वाली आमदनी को इन साप्ताहिक पत्रों के अलावा फीनिक्स मुख्यत: खादी के कार्य पर खर्च करते थे। उन्होंने नवजीवन प्रेस का एक लाख रुपए का सार्वजनिक न्यास बना दिया।

खराब छपाई को वह हिंसा से कम नहीं समझते थे। वह इस बात पर बहुत जोर देते थे कि पत्र और किताब में अक्षर साफ और एक-से हों, कागज मजबूत हो और आवरण सादा और सुंदर हो। वह जानते थे कि भारत जैसे गरीब देश के साधारण पाठक, बढ़िया जिल्दों वाली कीमती पुस्तकें नहीं खरीद सकते। गांधी के जीवनकाल में नवजीवन प्रेस ने सस्ते दाम की बहुत-सी पुस्तकें छापीं। गुजराती में प्रकाशित उनकी आत्मकथा का मूल्य केवल बारह आने था। इस पुस्तक का एक सस्ता संस्करण हिन्दी में भी प्रकाशित किया गया।

गांधी भारत भर में सब भाषाओं के लिए एक ही लिपि का प्रयोग बहुत आवश्यक और लाभदायक मानते थे, क्योंकि इससे पाठकों और मुद्रकों का बहुत समय और श्रम बच जाता है। वह सब लिपियों में देवनागरी को ज्यादा पसंद करते थे, क्योंकि भारत की लगभग सभी भाषाओं का आधार संस्कृत है। गुजराती 'इंडियन ओपीनियन' के एक अंक में तुलसीदास कृत रामायण के बारे में पूरा एक पृष्ठ का लेख नागरी लिपि में छापा गया था। 'हरिजन' पत्र के लिए टाइप के अक्षरों का चुनाव स्वयं गांधी ने किया था।

गांधी अपने लेखों का स्वत्व या कापीराइट अपने पास रखने के पक्ष में नहीं थे

और अपनी पत्रिकाओं में छपे अपने लेखों को उद्धृत या अनुवाद करने का हक उन्होंने सबको दे रखा था। लोग उनके लेखों को तोड़-मरोड़ कर छापने लगे, तब वह अपने लेखों पर अपना स्वत्व रखने को राजी हो गए।

गांधी का विचार था कि बच्चों की किताबों को मोटे अक्षरों में छापना चाहिए, और उसमें हर बात को रेखाचित्रों के द्वारा समझाना चाहिए। वह छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ छापने के पक्ष में थे। उन्हें पढ़ने में बच्चे थकते नहीं, और उन्हें सँभालना बच्चों के लिए आसान होता है। एक बार उनके आश्रमवासी एक सहयोगी ने, जो राष्ट्रीय शिक्षा का काम देखते थे, एक बाल-पोथी प्रकाशित की। इस पुस्तक में हर पृष्ठ पर चित्र दिए गए थे और उसे रंगीन चिकने कागज पर छापा गया था। उन्होंने कुछ गर्व के साथ गांधी से पूछा : "बापूजी, आपने बाल-पोथी देखी? इस पुस्तक की सारी कल्पना मेरी अपनी है।" गांधी ने कहा : "हाँ, देखी। यह सुंदर है। लेकिन इसे तुमने किसके लिए छापा है? पाँच आने की किताब कितने लोग खरीद सकते हैं? तुम भारत के करोड़ों भूखे-नंगे गरीब लोगों के बच्चों की शिक्षा के लिए जिम्मेदार हो। अगर दूसरी किताबों का मूल्य एक आना हो, तो तुम्हारी किताबों का मूल्य एक पैसा ही होना चाहिए।" गांधी ने एक बार एक साप्ताहिक पत्रिका का संचालन अपने हाथ में लिया जिसकी एक प्रति का मूल्य दो आना था। उन्होंने उसका मूल्य घटाकर एक आना कर दिया।

प्रकाशन के धंधे में गांधी की नजर केवल पैसों की ओर नहीं थी। वह चाहते थे कि जो भी पुस्तक निकले वह अच्छी हो। एक बार नवजीवन प्रेस ने गोखले जी के लेखों और भाषणों का गुजराती संकलन प्रकाशित करने का निश्चय किया। अंग्रेजी से गुजराती में अनुवाद का काम एक शिक्षा विशेषज्ञ ने किया था। किताब छप जाने पर गांधी से उसकी प्रस्तावना लिखने का अनुरोध किया गया। गांधी ने देखा कि अनुवाद बहुत ही रद्दी हुआ है, इसलिए उन्होंने कहा कि इस पुस्तक को रद्द कर दिया जाए। जब उन्हें बताया गया कि पुस्तक के ऊपर सात सौ रुपए खर्च किए जा चुके हैं, तब वह बोले: "क्या आप जिल्दबंदी पर और रुपया खर्च करके इस कूड़े को जनता के सामने रखना चाहते हैं? मैं रद्दी किताबें निकालकर लोगों की रुचि नहीं बिगाड़ना चाहता।" नतीजा यह हुआ कि छपी-छपाई किताब की सारी प्रतियाँ जला दी गईं और रद्दी में भी नहीं बिकने दी गईं।

गांधी अखबारों की स्वतंत्रता के कट्टर समर्थक थे। जब सरकार किसी महत्त्वपूर्ण विषय पर स्वाधीनता से अपने विचार प्रकाशित करने से गांधी को रोकती थी तब वह अपनी पत्रिकाओं का प्रकाशन बंद कर देते थे। अपने विचारों को खुले रूप में छापने से

उनके प्रेस को जब्त कर लिया गया, उनकी फाइलें नष्ट कर दी गईं। उन्हें और उनके साथी कार्यकर्ताओं को जेल में डाल दिया गया। लेकिन गांधी ने हार नहीं मानी, उन्होंने कहा : "हम लोग छपाई की मशीन और सीसे के टाइप के गुलाम नहीं हैं। हम तो लिखेंगे और हाथों से सैकड़ों प्रतियाँ बनाएँगे। हर आदमी चलता-फिरता अखबार बन जाएगा और मुँह से खबरों को फैलाएगा। इनको कोई सरकार नहीं रोक सकती।"

नई रिवाज वाले

गांधी सादगी-पसंद और फैशन से कोसों दूर रहने वाले आदमी थे, लेकिन रहन-सहन और पहरावे में नई रिवाज चालू करने में कुशल थे। दक्षिण अफ्रीका में गांधी ने पतलून के साथ सैंडिल पहननी शुरू की। उस समय के लिए यह एक अजीब और नई बात थी। गांधी जूतों की बजाय सैंडिल को इसलिए ज्यादा पसंद करते थे कि उनसे गर्मियों में पैरों में ठंडक रहती थी और सर्दी में उन्हें मोजों पर भी पहना जा सकता था। सैंडिल वह स्वयं बना लेते थे। दक्षिण अफ्रीका के प्रधान मंत्री जनरल स्मट्स को जब पता चला कि हाथ की बनी सैंडिल मजबूत होने के साथ-साथ आरामदेह भी होती हैं, तब उन्होंने भी एक जोड़ी सडिल पहनने की इच्छा प्रकट की। लिहाजा गांधी ने एक जोड़ी सैंडिल बनवाकर जनरल स्मट्स को भेंट कीं।

गांधी ने खाने-पीने और पहनने में अनेक नए ढंग शुरू किए, इनमें से कुछ को लोगों ने अपनाया और इससे नए रिवाज चल पड़े।

गांधी जब पहली बार कांग्रेस के अधिवेशन में शामिल हुए तो उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि भिन्न-भिन्न जाति के लोगों के लिए अलग रसोईघर ही नहीं थे, बल्कि अलग-अलग रुचि के लिए भी अलग-अलग खाना पकता था। गांधी छोटी-छोटी चीजों को भी महत्त्व देते थे। इसलिए उन्हें लगा कि जब तक लोग अपनी-अपनी खिचड़ी अलग पकाना छोड़कर, साथ-साथ खाएँ-पीएँ, उठें-बैठेंगे नहीं, तब तक स्वराज्य नहीं आ सकता। वह लोगों की भोजन की आदतों को सरल बनाकर अलग-अलग खाना बनाने में पैसा, मेहनत और समय की बर्बादी को रोकना चाहते थे। उन्होंने भोजन के बारे में अनेक प्रयोग किए। उनके आश्रमों में सभी के लिए बिना मसाले का सादा निरामिष भोजन एक ही रसोई में बनता था। इस निरामिष भोजन को मुसलमान, हिन्दू, ईसाई सब एक ही स्थान पर साथ बैठकर खाते थे।

गांधी कहते थे कि कच्चे सलाद, फल, मेवा, उबली सब्जी, हाथ-कुटे चावल और हाथ के पिसे आटे में बहुत पुस्टई होती है। उन्होंने लोगों को समझाया कि ताजे

गुड़ या शहद में सफेद चीनी से ज्यादा विटामिन होते हैं। उन्होंने लोगों को यह सिखाने की कोशिश की कि मिर्च, मसाले, रूप, रंग और गंध की बजाय खाने की चीजों के तत्वों पर ज्यादा ध्यान देना चाहिए।

फैजपुर कांग्रेस अधिवेशन में पहली बार प्रतिनिधियों को हाथ-कुटा चावल और चोकर वाले आटे की रोटियाँ परोसी गईं। यह गांधी की ही कल्पना थी कि कांग्रेस का अधिवेशन गाँव में होना चाहिए। पहले कांग्रेस के इजलास में केवल पढ़े-लिखे और ऊँचे लोग ही शामिल होते थे। कांग्रेस के अधिवेशन कलकत्ता, बंबई और मद्रास जैसे बड़े नगरों में हुआ करते थे। गांधी ने कांग्रेस को जनता की संस्था बना दिया और उसमें आम लोग भी शामिल होने लगे। विदेशी ढंग के कोट-पतलून पहन कर अंग्रेजी में भाषण झाड़ने की बजाय सीधी-सादी भारतीय वेश-भूषा में गांधी श्रोताओं के सामने सरल हिन्दी में भाषण करते थे।

कांग्रेस अधिवेशन के लिए फैजपुर में जो तिलकनगर बनाया गया, उसकी पूरी योजना गांधी ने तैयार की थी। गाँव में आसानी से मिलने वाली चीजें--बाँस, फूस आदि से गाँव के कारीगरों और मजदूरों ने कांग्रेस के बड़े पंडाल और प्रतिनिधियों की बस्ती को बनाया। कलाकार नंदलाल बोस ने गांधी की कल्पना को मूर्तरूप दिया। छतें और दीवारें बाँस की चटाई से बनाई गई थीं। मुख्य द्वार को रंग-बिरंगे बाँस से बनाया गया था, जिस पर बाँस की टोकरियाँ सजावट के लिए उल्टी टाँग दी गई थीं। द्वार पर फहराते हुए राष्ट्रीय झंडे का रूप भी गांधी ने दिया था। इससे कुछ वर्ष पहले उन्होंने झंडे को आखिरी रूप प्रदान किया था। इस झंडे में तीन रंग होते थे--केसरिया, सफेद और हरे रंग की आड़ी पट्टियाँ। सफेद पट्टी के बीच में गहरे नीले रंग का चरखा अहिंसा और जनता का प्रतीक था।

हमारी सीधी-सादी किंतु सुंदर राष्ट्रीय वेश-भूषा चालू करने का श्रेय भी गांधी को है। दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रहियों के जिस ऐतिहासिक कूच का उन्होंने नेतृत्व किया था उसमें सैकड़ों खान और गिरमिटिया मजदूर थे। इनमें से ज्यादातर लोग दक्षिण भारत के थे। इन सत्याग्रहियों को तरह-तरह की कठिनाइयाँ उठानी पड़ीं। बहुत-से लोग जेलों में डाल दिए गए और कुछ मर भी गए। उनसे सहानुभूति और अपनापन सूचित करने के लिए गांधी ने उनकी पोशाक, कुर्ता और लुंगी पहनने का निश्चय किया। छड़ी की जगह उन्होंने हाथ में लंबी लाठी ली और कंधे पर एक झोला।

गांधी ने शक्तिशाली अंग्रेज सरकार की हिंसा और फौजी ताकत का मुकाबला

करने के लिए सत्याग्रह, अहिंसात्मक असहयोग और सामूहिक सविनय अवज्ञा के हथियार निकाले। अपने समर्थन में वह प्रह्लाद और विभीषण का उदाहरण देते थे, जिन्होंने पाप और पशुबल से बिल्कुल असहयोग किया था। असहयोग की कल्पना को वह अपनी मौलिक सूझ नहीं मानते थे, किन्तु अन्याय और बुराई के खिलाफ सामूहिक असहयोग के प्रयोग का तरीका और राजनीतिक क्षेत्र में उसका प्रचलन उनकी मौलिक सूझ-बूझ थी। इस उपाय को अद्भुत सफलता भी मिली। एक विदेशी पत्रकार ने एक बार उनसे पूछा : "क्या परमाणु बम ने सत्य और अहिंसा में आपकी आस्था को हिला नहीं दिया है ?" गांधी ने उत्तर दिया : "नहीं ! अब भी अहिंसा और सत्य में मेरी अटल आस्था है। ये दोनों चीजें उस परम साहस की प्रतीक है, जिसके सामने परमाणु बम नहीं टिक सकता। अहिंसा को परमाणु बम खत्म नहीं कर सकता।" भारत की विशाल शक्ति को संगठित करने में गांधी का जितना हाथ है उतना और अन्य किसी व्यक्ति का नहीं।

उनके नेतृत्व में भारत ने अहिंसा के जरिए स्वाधीनता प्राप्त की। वह चाहते थे कि संसार की सभी शोषित जातियों को, चाहे वे एशिया की हों, अमेरिका की हों, या अफ्रीका की, भारत मुक्ति का मार्ग दिखाए। उनका कहना था : "भारत की लड़ाई अहिंसात्मक है, इसलिए वह प्रबल शक्ति के खिलाफ सभी दलित और पीड़ित जातियो की मुक्ति की लड़ाई है।" और उनकी यह बात सच हुई। भारत के आजाद होने के बाद बहुत-से उपनिवेशों को बिना रक्तपात के स्वतंत्रता प्राप्त हो चुकी है। अमेरिका के नीग्रो लोगों में भी इसी तरीके से मानव-अधिकार की प्राप्ति का आंदोलन फैला और उनके नेता मार्टिन लूथर किंग ने गांधी का अनुकरण किया।

गांधी सत्याग्रह का जो प्रयोग कर रहे थे, उसके साथ ही उनकी वेश-भूषा भी काफी बदल गई थी। दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटने के बाद गांधी ने धोती, कुर्ता लंबा कोट और काठियावाड़ी ढंग की पगड़ी पहनना शुरू किया। लेकिन उन्होंने शीघ्र ही महसूस किया कि यह पोशाक गर्म जलवायु के अनुपयुक्त है। इसके अलावा पगड़ी में कई गज कपड़ा व्यर्थ लगता है। इसलिए वह धोती, कुरता और टोपी पहनने लगे। पुराने विचारों के संभ्रांत लोग गांधी को इस पोशाक में बड़ी-बड़ी बैठकों और सार्वजनिक सभाओं में शामिल होते देखकर चकित होते थे। कताई और बुनाई सीख लेने के बाद गांधी केवल खादी पहनने लगे। गांधी की टोपी कश्मीरी टोपी से मिलती जुलती थी, लेकिन उस पर कढ़ाई का काम नहीं होता था। गांधी केवल सफेद रंग ही

पसंद करते थे । लोगों ने कहा कि सफेद टोपी जल्दी मैली हो जाती है । गांधी ने उत्तर दिया : "मैंने सफाई की खातिर ही सफेद रंग चुना है । पतले कपड़े की यह टोपी ग्रासानी से धुल सकती है ग्रौर सूखने में भी ज्यादा समय नहीं लेती । गहरे रंग की टोपी भी तो मैली हो जाती है लेकिन उसमें मैल छिप जाता है ।" खादी की धोती या पाजामा, कुरता ग्रौर गांधी टोपी—यह पोशाक बहुत लोकप्रिय हो गई ग्रौर राष्ट्रीय पोशाक बन गई ।

बहुत से बिहारियों, मारवाड़ियों ग्रौर गुजरातियों ने ग्रपनी विशिष्ट ढंग की पगड़ियों को छोड़कर गांधी टोपी को ग्रपना लिया ग्रौर बहुत से मुसलमान भी फ़ैज टोपी की जगह गांधी टोपी पहनने लगे । बंगाली ग्रौर दक्षिण भारतीय लोग ग्रामतौर से नंगे सिर रहते हैं, लेकिन वे भी गांधी टोपी पहनने लगे । स्वदेशी ग्रांदोलन के दिनों में ग्रंग्रेज सरकार गांधी टोपी से उसी तरह चिढ़ने लगी थी, जिस प्रकार लाल कपड़े से साँड़ भड़कता है । स्कूलों में लड़कों को गांधी टोपी पहनने पर सजा दी जाती थी । स्वयं गांधी ने इस टोपी को बहुत थोड़े दिनों ही पहना । वह ग्रपनी वेश-भूषा सादी से सादी बनाते गए ग्रौर ग्रंत में घुटने तक की धोती (कोपीन), चादर ग्रौर चप्पल पर ग्रा गए ग्रौर उनकी पोशाक ग्रंत तक यही रही । उनका विश्वास था कि नेता को रहन-सहन में ग्रपने देशवासियों का सच्चा प्रतिनिधि होना चाहिए । वे इसी पोशाक में यूरोप ग्रौर इंग्लैंड में भी घूमे ग्रौर ब्रिटिश सम्राट् से भी मिले । देश-विदेश के राजपुरुष, कवि ग्रौर लेखक उनसे मुलाकात करना चाहते थे । गांधी उन्हें ग्रपने ग्राश्रम में निमंत्रित करते थे । एक बार इंग्लैंड के एक प्रतिष्ठित ग्रागंतुक को गांधी से मुलाकात के लिए रेलवे स्टेशन से ग्राश्रम तक बैलगाड़ी में ग्राना पड़ा था । ये सज्जन मिट्टी की कुटिया में जमीन पर बैठ कर गांधी के साथ गंभीर-से-गंभीर विषय पर चर्चा करते थे । वे ग्राश्रम का सादा भोजन खाते थे । 'सेवाग्राम का संत' ग्रपने ग्रतिथियों का बहुत ख्याल रखता था । लेकिन ग्रपने विदेशियों के ग्रागे गाँव का मोटा ग्रौर सादा भोजन रखने में उसे तनिक भी संकोच नहीं होता था । वे ऐसा नहीं मानते थे कि किसी देश या राज्य का गौरव, विशेषकर एक गरीब देश का गौरव तड़क-भड़क में है । इसके विपरीत मिथ्या ग्रभिमान, झूठे दिखावे ग्रौर गरीबी को छिपाने की कोशिश से उनके दिल को ठोस पहुँचती थी । ग्रपने ग्रामीण ग्राश्रम से गांधी को ग्रकसर छोटे-बड़े लाट बहादुरों, गवर्नरों, ब्रिटिश ग्रौर विदेशी राजपुरुषों के साथ गंभीर बात करने के लिए दिल्ली ग्रौर शिमला, कलकत्ता ग्रौर बंबई की दौड़ लगानी पड़ती थी । ग्रपने विचारों को फैलाने के लिए ग्रौर ग्रपने देशवासियों से संपर्क रखने के लिए,

गांधी ने कई बार पूरे भारत का भ्रमण किया, लेकिन वह कभी हवाई जहाज पर नहीं चढ़े। रेल में वह तीसरे दर्जे में सफर करते थे। स्वतंत्रता से पहले अन्य भारतीय नेता भी उनकी नकल करते थे। गांधी प्रशासन की सारी प्रणाली को बदल देना चाहते थे। वह कहते थे: "जनतंत्र में किसान को शासक होना चाहिए। किसान प्रधान मंत्री को रहने के लिए बड़े महलों की जरूरत नहीं होगी। वह मिट्टी की कुटिया में रहेगा, खुले आकाश के नीचे सोएगा और जब भी फुर्सत होगी, खेतों में काम करेगा।"

गांधी जानते थे कि अमीरी के वातावरण में जन्मे और पले लोगों में ऐसे क्रांतिकारी विचारों को अपनाने का साहस नहीं है। वह बिल्कुल आरंभ से ही बच्चों को नए ढंग की शिक्षा देना चाहते थे। उन्होंने मशहूर शिक्षा विशेषज्ञों के प्रयोगों पर गौर किया और बच्चों के मन को ठीक ढंग से ढालने का एक नया तरीका निकाला। उन्होंने इसे 'नई तालीम' का नाम दिया। नई तालीम में किताबी शिक्षा को ज्यादा महत्त्व नहीं दिया गया था। उनका उद्देश्य केवल निरक्षरता को ही नहीं बल्कि अज्ञान को हटाने का था। बालकों को दस्तकारी के द्वारा शिक्षा देकर वह उनके व्यक्तित्व को विकसित करना और उनमें आत्म-विश्वास पैदा करना चाहते थे। वह छात्रों के मन में सभी धर्मों के प्रति आदर, सभी जातियों के प्रति प्रेम तथा सभी प्रकार के काम के प्रति सम्मान का भाव पैदा करना चाहते थे।

उन्होने सामूहिक प्रार्थना सभाओं में विभिन्न धर्मों के ग्रंथों से चुने हुए अंशों का संग्रह कर उन्हें प्रार्थना का रूप दिया।

अपने विचारों को फैलाने के लिए उन्होंने कई सभाओं में भाषण दिए और पत्रिकाओं में हजारों लेख लिखे। उन्होंने स्वयं कई साप्ताहिक पत्रिकाएँ निकालीं जो बहुत प्रसिद्ध हुईं। लेकिन इन पत्रों में वह कोई विज्ञापन स्वयं नहीं छापते थे, यद्यपि इससे उन्हें अच्छी आमदनी हो सकती थी। वह धन की परवाह नहीं करते थे, किन्तु किसी भी चीज की बर्बादी उनको बहुत नापसंद थी। एक बार उन्होंने सार्वजनिक सभाओं के आयोजकों से कहा कि सजावट के ऊपर फिजूल खर्च न किया जाए। फलों का उपयोग बिल्कुल न किया जाए और पहनानी हों तो सूत की मालाएँ भेंट की जाएँ। सावधानी रखी जाए कि सूत उलझे नहीं। झंडे और झंडियाँ खद्दर की कतरनों की बनाई जाएँ। अभिनंदन पत्रों को छापने में पैसा खर्च न किया जाए। इसे हाथ के बने साधारण कागज पर सुंदर अक्षरों में लिखवाया जाए। इस कागज को अच्छे ढंग से खद्दर पर टाँक लिया जाए, या लड़कियाँ खद्दर के टुकड़ों पर अक्षरों को काढ़ लें।"

मकान की भीतरी सजावट के बारे में उनके विचार अनोखे थे। कमरे में कालीन,

गलीचे, ढेर सारे असबाब और कला-वस्तुओं की भीड़-भाड़ उन्हें पसंद नहीं थी। खिड़कियों पर पर्दे लगाने का उनको कोई शौक नहीं था। एक बार वह दक्षिण भारत के एक धनी व्यापारी के घर ठहरे। उन्हें उनके घर में कला की वस्तुओं का बेढंगा और भोंड़ा संग्रह बहुत नापसंद आया। उन्होंने कहा : "बहुत ज्यादा असबाब के बीच मेरा दम घुटने लगता है। आपने जो चित्र लगाए हैं उनमें से कुछ बड़े भद्दे हैं। अगर आप मुझे चेट्टि-नाड के सभी मकानों की भीतरी सजावट करने का ठेका दें, तो मैं इससे अच्छी सजावट इसके दशांस खर्च में कर दूँगा तथा आपको ज्यादा आराम और ताजी हवा भी मिलेगी। साथ ही भारत के अच्छे-से-अच्छे कलाकारों से मैं यह प्रमाणपत्र भी ले लूँगा कि मैंने आपके मकान बहुत कलात्मक ढंग से सजाए हैं।" सेवाग्राम में गांधी की कुटिया की नंदलाल बोस ने जो सराहना की थी, उससे गांधी का यह दावा उचित सिद्ध होता है। बोस महोदय ने लिखा था : "कुटिया का फर्श और दीवारें गोबर से लिपी हुई थीं। कमरे में एक भी चित्र, फोटो, गुड़िया या मूर्ति नहीं थी। एक कोने में बैठने के लिए एक चटाई थी जिस पर खादी की साफ चादर बिछी थी और एक गद्दी रखी थी। खादी से ढका हुआ एक लकड़ी का बक्सा लिखने की मेज का काम देता था और इसके एक तरफ काँसे का एक छोटा-सा चमकदार लोटा रखा था जिस पर पीपल के पत्ते की आकृति का एक लोहे का ढक्कन था। कमरे में स्वच्छता, सुघरता और सरल सुंदरता छाई हुई थी। गांधी केवल खादी की कोपीन पहने बैठे थे। एक मधुर मुस्कान उनके मुख पर खेल रही थी। इस्पात की पानी-दार नंगी तलवार की भाँति चमचमाती उनकी वह मूर्ति मुझे नजर आई।"

सँपेरा

गांधी जब छोटे थे तब वह साँपों से बहुत डरते थे। वह अँधेरे में अकेले नहीं जा सकते थे। उन्हें लगता था कि अँधेरे में भूत-प्रेत, चोर और साँप छिपे हुए हैं।

पैंतीस वर्ष की आयु में गांधी एक प्रकार से वानप्रस्थी हो गए थे और आश्रम में रहने लगे थे। उनके आश्रम में रहने के लिए शुरू में कोई झोंपड़ी या कुटिया नहीं थी। आश्रम एक बड़ा-सा अहाता था जिसमें एक कुआँ था, खेती के लिए काफी जमीन थी और एक बड़ा बगीचा था। शहर की गंदगी और शोर-गुल से दूर, यह एक शांत स्थान था। गांधी अमीर नहीं थे, इसलिए उन्होंने अपने आश्रम के लिए सस्ती बंजर भूमि खरीदी और अपनी मेहनत से उसमें खेत और बाग बनाए। फीनिक्स बस्ती, टाल्स्टाय बाड़ी, साबरमती आश्रम, वर्धा आश्रम और सेवाग्राम, इन सभी आश्रमों में साँप बहुत थे। रहने के लिए झोंपड़ी बनने के पहले आश्रमवासियों को तंबुओं में रहना पड़ता था, और बाल-बच्चों के साथ ऐसी वीरान जगह में रहना जोखिम का काम था। किसी दिन खलिहान की छत से कोई साँप लटकता दिखाई पड़ता था तो किसी दिन साईकल के पास दो साँप गेंडुरी मारे पड़े दिखाई पड़ते। कभी-कभी सोने के स्थान के पास भी साँप घुस आते थे। साँपों का आना रोकने के लिए क्या उपाय किया जाए, यह बहुत बड़ी समस्या थी।

गांधी अहिंसा में विश्वास करते थे और कट्टर वैष्णव थे। वह बीमारी में भी अपने बेटे या पत्नी की या अपनी जान बचाने के लिए अंडा, मांस का शोरवा या ऐसी दवा नहीं लेते थे जिसमें किसी जीव की हिंसा हुई हो। गांधी ने देखा था कि दूध की अंतिम बूंद निचोड़ने के लिए गाय-भैंसों को किस प्रकार की यंत्रणा पहुँचाई जाती है और इसी कारण उन्होंने गाय या भैंस का दूध लेना छोड़ दिया था। फिर वह साँप को कैसे मार सकते थे? उनके आश्रम में सामान्य नियम यह था कि जहरीले साँप को भी मारा न जाए। रस्सियों से एक फंदा जैसा तैयार किया गया था, जिसमें साँप को पकड़ कर आश्रम से दूर छोड़ दिया जाता था। लेकिन यदि साँप किसी ऐसी जगह बैठा हो जहाँ उसे पकड़ा न जा सके या पास जाकर साँप को पकड़ने की हिम्मत न पड़े,

उस समय क्या किया जाए? गांधी जानते थे कि हिंसा से बिल्कुल बचा रहना तो असंभव है, शाक-सब्जी खाने में भी पेड़-पौधों की हिंसा होती है। अतः उन्होंने खेदपूर्वक स्वीकार किया : "किसी साँप के मारे जाने पर मुझे उतना दुख नहीं होता जितना कि साँप के काटने से किसी बच्चे की मृत्यु पर। मैं अभी भी साँपों से डरता हूँ इसलिए दूसरों से कैसे कहूँ कि न डरो।" जब साँपों को भगाने के सभी उपाय विफल हो गए तब उन्होंने साँपों को मारने की अनुमति दे दी। लेकिन साँप मारने की नौबत बहुत ही कम आती थी।

गांधी को साँपों के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त करने की बड़ी तीव्र इच्छा थी। कैलेनबाख से उन्होंने विषैले और निर्विष साँपों की पहचान करना सीखा। साँप के संबंध में अधिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए कैलेनबाख ने एक बार काला साँप पकड़ा और उसे पिंजड़े में बंद कर दिया। उसे वह खुद अपने हाथ से भोजन देते थे। आश्रम के बच्चों को साँप को देखने में बड़ा मजा आता था। इस साँप को कोई तंग भी नहीं करता था। लेकिन गांधी खुश नहीं थे। कैलेनबाख से कहा: "हमने साँप को केवल उसकी आदतों की जानकारी प्राप्त करने के लिए पकड़ रखा है। मगर साँप को क्या मालूम कि हम उसको नुकसान नहीं पहुँचाना चाहते। उसके साथ खेलने की हिम्मत न तुममें है और न हममें। तुम्हारी मैत्री की भावना भयरहित नहीं है। साँप को पालने में प्रेम-भाव नहीं है।" शायद साँप को भी लगता था कि मनुष्य का व्यवहार बहुत कुछ मैत्रीपूर्ण नहीं है, और एक दिन वह मौका पाकर पिंजड़े से भाग गया।

उसी आश्रम में एक और अन्य जर्मन सज्जन रहते थे जो साँपों से बिल्कुल नहीं डरते थे। वह साँप के बच्चों को पकड़ लेते थे और उन्हें हथेली पर रखकर उनसे खेलते थे। गांधी भी ऐसी ही निर्भीकता पैदा करना चाहते थे। वह उस स्थिति को प्राप्त करना चाहते थे जब साँप उनके स्पर्शमात्र से यह समझ जाए कि यह मेरा शत्रु नहीं, मित्र है। वह मानते थे कि उनके अंदर इतना साहस पैदा हो जाए कि वह रामनाम जपते हुए किसी साँप के मुँह में हाथ डाल सकें, तो यह बहुत बड़ी बात होगी। लेकिन गांधी जीवन भर साँप या बिच्छू को हाथ से पकड़ने का साहस पैदा नहीं कर सके, और इसके लिए वह लज्जा अनुभव करते थे।

महत्त्वपूर्ण कार्यों में व्यस्त रहते हुए भी साँपों के अध्ययन में उनकी रुचि मिट नहीं गई। एक बार कुछ नेतागण गांधी से मिलने पहुँचे और यह देखकर घबरा गए कि एक साँप गांधी के गले से झूल रहा है। गांधी उस समय बड़े मनोयोगपूर्वक

एक सँपेरे से साँपों को पकड़ने की कला और साँप के काटे का इलाज सीख रहे थे। यह तय हुआ कि प्रयोग के लिए किसी व्यक्ति को साँप से कटवाया जाए और फिर उसका विष उतारा जाए। गांधी खुद अपने को साँप से कटवाने के लिए तैयार थे लेकिन उनके साथियों ने उनके जैसे मूल्यवान जीवन के साथ ऐसा खतरनाक खिलवाड़ करने नहीं दिया। इस प्रकार सत्तर वर्ष की उम्र में गांधी को एक सँपेरे का चेला बनने का अवसर खो ही गया।

इससे बरसों पहले दक्षिण अफ्रीका की बात है। वहाँ जेल में गांधी के मसूड़ों में खून निकलता था। एक नीग्रो कैदी उनकी सेवा करता था। दोनों एक दूसरे की भाषा नहीं समझते थे, और जो कुछ बात करनी होती, इशारों से करते थे। एक दिन वह नीग्रो कैदी दर्द से चिल्लाता हुआ उनके पास आया। पूछने पर गांधी को पता चला कि उसकी उँगली में साँप या किसी कीड़े ने काट लिया है। उन्होंने तुरंत जेल के अस्पताल को पुर्जा भेजा। वह जानते थे कि जहरीले खून को निकाल देने से लाभ होता है। चूँकि कोई साफ चाकू उस समय नहीं मिला इसलिए कटी हुई उँगली में मुँह लगाकर वह जहर चूसने लगे। उनको मालूम था कि जख्मी मसूड़ों वाले मुँह से जहर को चूसना खतरनाक है। लेकिन उस नीग्रो की पीड़ा उनसे सहन नहीं हुई और वे रुके नहीं।

गांधी जानते थे कि सब साँप जहरीले नहीं होते और न हर साँप के काटने से मौत ही होती है। केवल बारह प्रतिशत साँप जहरीले होते हैं। गांधी अपने देशवासियों को, विशेष-रूप से गाँव वालों को साँपों के बारे में सही जानकारी देना चाहते थे, जिससे वे उन निर्विष साँपों को न मारें। उन्होंने अपनी पत्रिका में इस विषय में साँपों के चित्र देकर कुछ लेख भी प्रकाशित किए। एक बार उन्होंने 'हरिजन' में लिखा : 'हम जहरीले और गैर जहरीले साँपो में भेद नहीं कर पाते और इसीलिए बिना सोचे-समझे सभी साँपों को मार डालते हैं। कई बार साँप का काटा आदमी (जहर के कारण नहीं बल्कि) भय के कारण मर जाता है। जहरीले साँप भी जब तक पैरों से दब न जाएँ या उन्हें सताया न जाए तब तक नहीं काटते। साँप खेतों से चूहे तथा कीड़े आदि का सफाया करते हैं, इसलिए उनको क्षेत्रपाल—खेतों का रखवाला—कहा जाता है। नागपंचमी के दिन गाँवों में माताएँ साँपों के लिए सकोरे में दूध भर कर रखती हैं। इस प्रकार साँपों के प्रति मैत्री दिखाई जाती है। सात फनों वाले शेषनाग के ऊपर शयन करते हुए विष्णु का चित्र मुझे बहुत अच्छा लगता है। वह यह दिखाता है कि अपने सर पर फन काढ़े साँप की शैया पर भगवान किस प्रकार निश्चित भाव से लेट सकते हैं और ईश्वर की दृष्टि में साँप कोई खतरनाक जीव नहीं है।"

एक बार देखा गया कि गाँव के छोटे-छोटे लडके गांधी की कुटिया के पास एक काँच

के इमर्तबान को घेर कर खड़े हैं और उसमें रखे साँप को बड़ी दिलचस्पी के साथ देख रहे हैं। यह साँप मरा हुआ था। कुछ दिनों पहले इसे आश्रम के पास पकड़ा गया था और एक डाक्टर के पास भेजा गया था। सर्जन ने देखा कि यह साँप 'करैत' था, जो अत्यंत जहरीला होता है। उसने साँप का सिर कुचल दिया और उसे वापस गांधी के पास भेज दिया। सिर कुचल जाने पर भी साँप की रीढ़ नहीं टूटी थी और वह तीन दिनों तक जीवित रहा। उसकी पीड़ा दूर करने के लिए उसे मार डाला गया था और उसे एक इमर्तबान में स्पिरिट भर कर रख दिया गया था। गांधी गाँव वालों को दिखाने के लिए मरे हुए या जिन्दा साँप रखना चाहते थे। जिन्दा साँपों को रखने के लिए उन्होंने एक पिंजड़ा भी बनवाया था जिससे गाँव के लोग साँपों की पहचान कर सकें।

गांधी ने एक बार अपने एक दार्शनिक मित्र से पूछा : "अगर किसी साधक पर साँप आक्रमण कर दे तो उसे क्या करना चाहिए ?" मित्र ने उत्तर दिया : "उसे साँप को मारना नहीं चाहिए और यदि साँप काटे तो उसे काटने देना चाहिए।" गांधी स्वयं साँपों को कभी चोट नहीं पहुँचाते थे और साँपों ने भी उनको या उनके आश्रमवासियों को कभी कोई हानि नहीं पहुँचाई। गांधी के किसी भी आश्रम में कभी किसी व्यक्ति की साँप के काटने से मृत्यु नहीं हुई। कई बार गांधी के शरीर से साँप छू गए। लेकिन सौभाग्यवश उनको कभी काटा नहीं।

एक बार जाड़े के दिनों में शाम के समय गांधी चादर ओढ़ कर बैठे हुए किसी मित्र से बातचीत कर रहे थे। अचानक एक साँप रेंगता हुआ उनकी चादर के ऊपर चढ़ आया और अंदर घुसने के लिए सिर से इधर-उधर टटोलने लगा। मित्र ने गांधी से कहा कि बिना हिले-डुले चुपचाप बैठे रहें। गांधी तनिक भी उद्विग्न नहीं हुए और मित्र से बोले कि घबराएँ नहीं। मित्र ने तब चादर को पकड़ कर जोर से दूर झटक दिया और साँप दूर गिर कर अपनी राह चला गया। एक बार गांधी भोजन के बाद लेटे हुए विश्राम कर रहे थे कि अचानक एक साँप उनके सीने पर चढ़ आया। गांधी तनिक भी विचलित नहीं हुए और साँप रेंग कर चला गया। गांधी एक बार अस्पताल में भर्ती थे। उस समय एक पढ़ा-लिखा आधुनिक सँपेरा उनसे मिलने आया। वह गांधी को दिखाना चाहता था कि वह साँपों को कैसे वश में रखता है और उसने कुछ जहरीले साँपों को गांधी के बिस्तर पर छोड़ दिया। ये साँप गांधी के कंबल पर मस्ती से झूमने लगे। गांधी साँपों को चाव से देखते रहे, लेकिन अपने पैर उन्होंने तनिक भी हिलाए नहीं।

एक दिन की घटना है। शाम का समय था और गांधी प्रार्थना में बैठे हुए थे। उस

दिन उनका मौन था । उसी समय एक साँप वहाँ आ गया और गांधी की तरफ बढ़ने लगा। गांधी के साथी एकदम घबरा उठे। हलचल देखकर साँप भयभीत हो गया और बचने के लिए गांधी की गोद में चढ़ गया । गांधी ने लोगों को शांत रहने के लिए इशारा किया और अपनी प्रार्थना जारी रखी । साँप सरक कर गोद से उतरा और चुपचाप चला गया । गांधी से लोगों ने पूछा कि साँप चढ़ने पर आपको कैसा लगा था । गांधी ने उत्तर दिया : "एक क्षण तो मैं घबराया। इसके बाद मैं फिर शांतचित्त हो गया। अगर साँप मुझे काट भी लेता तो मै कहता : 'इसे मारो मत, इसको हानि न पहुँचाओ, इसे जाने दो' ।"

पुरोहित

ब्रह्मचर्य और गरीबी का जीवन अपनाकर गांधी ने यह दिखाया कि जो लोक सेवा करना चाहते हैं उन्हें घर-गृहस्थी के बंधनों से मुक्त रहना चाहिए।

यह विचार मन में जमने से पहले गांधी को अपने अविवाहित मित्रों की शादी कराने का बहुत शौक था। वह चाहते थे कि उनके सभी मित्र एक बड़े परिवार की भाँति मिलकर रहें। उन्होंने भारत के अपने साथी कार्यकर्ताओं को अपनी पत्नियों के साथ दक्षिण अफ्रीका बुलाया और अपने अंग्रेज मित्र, श्री वेस्ट और श्री पोलक को जल्दी विवाह करने को उत्साहित किया। पोलक के सामने आर्थिक कठिनाइयाँ थीं, इसलिए वह विवाह करने से हिचकते थे। लेकिन गांधी ने उनसे कहा कि जब दो दिलों का मेल हो गया तो बहुत दिनों की पक्की हुई शादी टालना ठीक नहीं है। अतः पोलक ने अपनी वाग्दत्ता को इंग्लैंड से दक्षिण अफ्रीका बुलाया और उसके आने के अगले ही दिन दोनों का विवाह हो गया। गांधी ने इस विवाह का सारा प्रबंध स्वयं किया और वर के सहबाला बने।

भारत में अपने आश्रम में गांधी कभी-कभी विवाह के अवसर पर स्वयं पुरोहित बनते थे। मगर उनकी विवाह पद्धति पुराने ढंग की नहीं होती थी। वह हिन्दू विवाह की पद्धति को सरल बनाना चाहते थे और बेकार रीति-रिवाजों को नहीं मानते थे। वह दहेज के विरोधी थे और धन-संपत्ति, ऊँची डिग्री और ऊँची जाति को अच्छे संबंध की कसौटी नहीं मानते थे। वह लड़के या लड़की के स्वास्थ्य, चरित्र और शारीरिक श्रम करने की क्षमता को ज्यादा महत्त्व देते थे। जिस विवाह में गांधी पुरोहित बनते थे उसमें वर और वधू हाथ की कती और बुनी खादी के वस्त्र पहनते थे और हाथ के कते सूत की माला के सिवा अन्य कोई आभूषण उनके शरीर पर नहीं होता था। विवाह की विधि बहुत सादी थी। होमकुंड के सामने वर-वधू अपनी-अपनी माला उतार कर एक-दूसरे को पहना देते थे और वैदिक मंत्रों का पाठ करते थे। वर को कोई कीमती भेंट या दहेज आदि नहीं दिया जाता था।

गांधी दहेज-प्रथा का बहुत विरोध करते थे और उन्होंने कालेज के छात्रों को इस बात के लिए बहुत फटकारा कि वे स्त्रियों को घर की दासी समझते हैं। गांधी को इस बात का

बहुत दुःख था कि पुरुषों ने स्त्रियों को अपने हृदय और घर की रानी मानने के बजाय उन्हें बिकने वाली वस्तु बना दिया है। पत्नी तो पुरुष की अर्धांगिनी कही गई है। गांधी कहते थे : "यदि मेरे कोई लड़की हो, तो मैं उसे जीवन भर कुँवारी भले ही रखूँ, लेकिन किसी ऐसे पुरुष से उसका विवाह नहीं करूँगा जो दहेज में एक कौड़ी भी माँगे।"

गांधी विवाह में तड़क-भड़क और दिखावा तथा बड़े-बड़े भोज देने की प्रथा को बहुत नापसंद करते थे। उनका विचार था कि जनतंत्र के इस युग में विवाह में दस रुपए से अधिक खर्च नहीं होना चाहिए। धार्मिक अनुष्ठानों के अलावा कोई रस्म या लोकाचार नहीं होना चाहिए। लेकिन देश का गरीब-से-गरीब आदमी भी इतनी दूर जाने को तैयार न था। यहाँ तो गाँवों में किसान लोग विवाह और मृत्यु-भोज आदि पर सामर्थ्य से बाहर खर्च करके कर्जदार बन जाते हैं। उनसे गांधी कहते थे : "मैं आप लोगों का पुरोहित बन कर सादगी से विवाह और श्राद्ध कराऊँगा।" श्राद्ध-कर्म का जो अर्थ लोग आमतौर पर समझते हैं, गांधी का उसमें विश्वास नहीं था। उनके विचार से पुरखों का श्राद्ध करने का एकमात्र सच्चा तरीका यह है कि अपने पुरखों के अच्छे गुणों को हम अपने जीवन में उतारें।

यज्ञोपवीत का जो गूढ़ अर्थ बताया जाता है उसे भी वह स्वीकार नहीं करते थे। उनका कहना था कि मैं यज्ञोपवीत पहनने में कोई तथ्य नहीं देखता। आर्य लोग अनार्यों से अपना अंतर जताने के लिए यज्ञोपवीत धारण करते थे। जो सूत्र केवल ऊँच-नीच का भेद जताता है, उसे उतार कर फेंक देना चाहिए। ब्रह्मचर्य का पालन ही सर्वोत्तम यज्ञोपवीत है।

पुरोहित के रूप में गांधी कोई दक्षिणा या भेंट नहीं लेते थे लेकिन कभी-कभी हरिजन-कोष के लिए चंदा माँग लेते थे। एक बार उन्होंने एक अंतर्जातीय विवाह कराया और दक्षिणा के रूप में हरिजनों के कुएँ बनाने के लिए पाँच हजार रुपए लिए। उनके आश्रम में एक ब्राह्मण वर और कन्या के विवाह में पुरोहित का काम एक ईसाई हरिजन ने किया था।

एक बार एक विवाह के अवसर पर गांधी ने निमंत्रितों को ताजा गुड़ खाने को दिया, जिसमें उनके छः आने खर्च हुए। एक बार एक वर को उन्होंने पत्र लिखा: "तुम यहाँ अकेले आ जाओ। मैं तुम्हारा विवाह करा दूँगा और तुम यहाँ से दुकेले होकर वापस जाओगे।" उनकी राय में वर के साथ उसके मित्रों या संबंधियों की बरात आने की जरूरत नहीं थी। जब उन्होंने देखा कि वर के साथ सात आदमी आए हैं, तो बोले : "अच्छा सप्तर्षि आ गए।" उन्होंने उत्तर दिया : "हाँ, और अरुंधती (वधू की माँ) भी।"

अपने तीसरे पुत्र के विवाह पर गांधी ने वर-वधू को गीता और आश्रम भजनावली की एक-एक प्रति, एक मंगलसूत्र तथा एक तकली भेंट की। उन्होंने अपने पुत्र से कहा :

"तुम अपनी पत्नी के सम्मान की रक्षा करना, उसके प्रभु नहीं, सच्चे मित्र बनना। तुम दोनों का जीवन मातभूमि की सेवा के लिए समर्पित रहे। तुम अपने परिश्रम से अपनी रोटी कमाना।"

वधू की माँ ने वर को एक चरखा भेंट किया। विवाह-संस्कार से पहले लड़के-लड़की ने उपवास किया, कुएँ के आसपास की जगह साफ की, गोशाला की सफाई की और पेड़ों में पानी दिया। यह चर, अचर, मनुष्य, पशु और पेड़-पौधे सब जीवों की एकता का सूचक था। उन्होंने सूत काता और गीता-पाठ भी किया। गांधी की सप्तपदी की जो कल्पना थी, ये सारे कार्य उसके अंग थे। विवाह निश्चित हो जाने के बाद भी गांधी ने उसे दो साल तक स्थगित रखा था और लड़की जब अठारह वर्ष की हो गई तभी विवाह हुआ।

गांधी ने बाल-विवाह के विरोध में कहा : "जब मैं अपने पास तेरह वर्ष के बच्चों को देखता हूँ तब मुझे अपने विवाह की याद आ जाती है। मुझे अपने ऊपर तरस आता है।...गोद में बिठाने लायक बच्ची को पत्नी के रूप में ग्रहण करने में मैं कोई धर्म नहीं देखता। जिस लड़की को उसकी सहमति के बिना माता-पिता ब्याह दें, उस लड़की का ब्याह हुआ है, ऐसा मैं नहीं मानता। एक पंद्रह वर्ष की लड़की का विधवा होना मेरे लिए अकल्पनीय चीज है। विधवाओं को भी पुनर्विवाह का उतना ही अधिकार है जितना किसी विधुर पुरुष को।" कुछ परिस्थितियों में वह तलाक के भी पक्ष में थे। एक बार उन्होंने जेल से एक ऐसी हिन्दू स्त्री को अपना आशीर्वाद भेजा था जो अपने पहले पति को छोड़ कर दूसरा विवाह करने जा रही थी।

गांधी अपने को आस्तिक सनातनी हिन्दू मानते थे; लेकिन वह जाति, संप्रदाय और प्रांत के बाहर विवाह के समर्थक थे। उनका विचार था कि इस प्रकार के विवाहों से विभिन्न जाति और धर्म के लोगों में मेल और निकटता बढ़ेगी। वे स्वयं गुजराती वैश्य थे, लेकिन उनके सबसे छोटे पुत्र देवदास ने मद्रास की ब्राह्मण कन्या से विवाह किया। गांधी इससे खुश थे।

गांधी के ऊपर अपने वैष्णव माता-पिता का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा था। बारह वर्ष की उम्र से ही वह अस्पृश्यता को पाप मानने लगे थे। सत्रह वर्ष की आयु में उन्होंने जाति या धर्म का भेद किए बिना सभी मनुष्यों के साथ एक-सा व्यवहार करना सीखा और इक्कीस साल की उम्र में उन्होंने गीता, बाइबिल तथा अन्य धर्मों के ग्रन्थों का अध्ययन किया। उनका विश्वास था कि किसी धर्म के अनुयायियों के लिए यह कहना मूर्खता है कि, 'केवल हमारा धर्म ही सच्चा है और बाकी सब धर्म झूठे हैं।' उन्होंने गीता और उपनिषदों का गहरा अध्ययन किया था और वेदों को भी कुछ पढ़ा था। शास्त्र के वचनों

को जब तक वह स्वयं अपने अनुभव की कसौटी पर नहीं कस लेते थे तब तक उनको प्रमाण नहीं मानते थे। विभिन्न धर्मों के अध्ययन से उनके मन में सहिष्णुता और दुखों को साहसपूर्वक सहन करने की क्षमता पैदा हुई। उन्होंने यह भी सीखा कि जो व्यक्ति पशुबल का सहारा लेता है वह अधर्म करता है, और आत्मबल पर निर्भर व्यक्ति ही धर्म के सच्चे स्वरूप को समझता है। धर्म-परिवर्तन को वह बेमतलब की चीज समझते थे। वह हिन्दू धर्म के ही नहीं, सिख, बौद्ध, इस्लाम और ईसाई धर्मों के सिद्धांतों को भी अच्छी तरह समझते थे और उतनी ही अच्छी तरह उनके सिद्धांतों की व्याख्या कर सकते थे। अकसर वह ईसाई गिरिजाघरों की प्रार्थनाओं में शामिल होते थे। एक बार उन्होंने हिन्दू धर्म के ऊपर चार व्याख्यान दिए थे जिनमें उन्होंने अन्य धर्मों की विशेषताओं को भी समझाया था।

वह ईसा के वचनों का इतना सटीक प्रयोग करते थे कि कुछ यूरोपीय उन्हें ईसाई समझते थे। एक बार एक जहाज पर यात्रा करते समय बड़े दिन के अवसर पर ईसाई यात्रियों ने गांधी से ईसा मसीह की शिक्षाओं के संबंध में प्रवचन करने का अनुरोध किया, और गांधी ने जहाज के डेक पर सुंदर प्रवचन किया। अपनी प्रार्थना सभाओं में गांधी कुरान की आयतों का भी पाठ करते थे। कुछ हिन्दुओं और मुसलमानों को भी इस पर बड़ी आपत्ति थी। हिन्दू धर्म के बारे में गांधी के विचार बहुत प्रगतिशील और परंपरा के विरुद्ध थे। वह किसी जाति को ऊँची या नीची नहीं मानते थे। कट्टर सनातनी कई बार उनके विचारों पर क्रुद्ध हुए। उन्होंने उन्हें काले झंडे दिखाए, उन पर जूते फेंके और उनकी हत्या करने का प्रयत्न किया। लेकिन इन सब बातों से गांधी तनिक भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने कहा: "यदि अस्पृश्यता हिन्दू धर्म का एक अंग है, तो मैं हिन्दू कहलाने से इंकार करता हूँ। यदि मानव के ऊपर कलंक-स्वरूप इस अस्पृश्यता को समाप्त नहीं किया जायगा तो हिन्दू धर्म को जीवित रहने का अधिकार नहीं। हमारे धर्म का आधार अहिंसा है और अहिंसा प्रेम के सिवा और कुछ नहीं है, अपने पड़ोसियों और अपने मित्रों से ही प्रेम नहीं, बल्कि जो हमारे शत्रु हों, उनसे भी प्रेम करें।" गांधी, ऐसे मंदिर में जिसमें सभी जाति के लोगों को जाने की छूट न हो, नहीं जाते थे। उनके वर्षों के प्रयत्नों के फलस्वरूप देश में बहुत से मंदिर हरिजनों के लिए खोल दिए गए।

गांधी सत्य को ईश्वर मानते थे और धर्म को दिखावे की नहीं जीवन में उतारने की और उस पर आचरण करने की वस्तु मानते थे। उनका कहना था कि सृष्टि के कण-कण में ईश्वर विराजमान है। वह निराकार ईश्वर के आराधक थे, किन्तु मूर्ति-पूजा के

विरुद्ध नहीं थे क्योंकि उनके मत में 'जो लोग मूर्ति की पूजा करते हैं वे पत्थर के नहीं, बल्कि उस पत्थर में विद्यमान ईश्वर की पूजा करते हैं।' मूर्ति-पूजा के बारे में चर्चा करते हुए एक बार उन्होंने रवीन्द्रनाथ ठाकुर से कहा था: "पीपल के नीचे सिंदूर से पुता पत्थर का एक टुकड़ा अंत्यज का देवता है। इसका भी महत्त्व है। यही पत्थर का टुकड़ा उन अछूतों को भगवान से मिलाता है। जब तक आप लँगड़े को चलना न सिखा दें, उसके हाथ की बैसाखी कैसे छीन सकते हैं।" वह वृक्षों की पूजा में भी कोई हानि या बुराई नहीं मानते थे। इसके पीछे गहरी ममता, करुणा और कविता छिपी हुई है। यह पूरे वनस्पति जगत के प्रति मनुष्य की श्रद्धा का सूचक है जिसमें ईश्वर की महिमा प्रकट होती है।

एक बार किसी ने गांधी का मंदिर बनवाया। इसकी खबर सुनकर गांधी बहुत नाराज हुए और उन्होंने अखबारों में इसके खिलाफ लिखा। आश्रम में उन्होंने इसकी सख्त ताकीद कर दी कि कोई उनके पैर न छुए।

इस संत पुरुष ने अपने देशवासियों को एक नए मंत्र की दीक्षा दी—देश और दरिद्र नारायण की सेवा का मंत्र, मानव की स्वतंत्रता, समानता और बंधुता का मंत्र, सभी प्रकार के भय और दासता से मुक्ति का मंत्र। उन्होंने अपने जीवन में, अपने विविध कार्यों में, स्वार्थ-त्याग का ऊँचा उदाहरण प्रस्तुत किया। बार-बार उन्होंने कहा कि : "मानव-जाति को अहिंसा के जरिए हिंसा से छुटकारा पाना है और केवल प्रेम के द्वारा ही घृणा पर विजय पाई जा सकती है।"

गांधी का जीवन कर्मयोग का उदाहरण था। वह गीता के इस कथन को अपना मूलमंत्र मानते थे कि जो व्यक्ति प्रतिदिन कर्मयज्ञ या शारीरिक श्रम किए बिना भोजन करता है वह चोरी करता है। शारीरिक श्रम को वह कर्मयज्ञ मानते थे। कोई दिन ऐसा नहीं जाता था जब वह किसी-न-किसी प्रकार का शारीरिक श्रम न करें। वह कभी झूठ नहीं बोलते थे, किसी प्राणी को हानि नहीं पहुँचाते थे और किसी की निंदा नहीं करते थे। वह नित्य सूर्योदय से पहले उठ जाते थे और प्रतिदिन सवेरे-संध्या दोनों समय प्रार्थना करते थे। अपनी दैनिक प्रार्थना में वह गीता, उपनिषद्, कुरान, जेंदावस्ता आदि ग्रंथों के चुने हुए अंशों का पाठ करते थे। चाहे वह कहीं भी हों, जहाज में हों या चलती हुई रेलगाड़ी में, किसी मुसलमान या ईसाई के घर हों या अछूत की कुटी में, या गाँव-गाँव का पैदल दौरा कर रहे हों, वह प्रार्थना के अपने दैनिक क्रम में कभी चूक नहीं होने देते थे। ऐसे भी अवसर आए जब उन्होंने इक्कीस दिन का उपवास किया और भोजन बिल्कुल छोड़ दिया, लेकिन प्रार्थना एक दिन के लिए भी नहीं छोड़ी। उनके लिए प्रार्थना कोई दिखावे

की चीज नहीं थी बल्कि ईश्वर में जीवत विश्वास की वस्तु थी। वह ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए नहीं, बल्कि आत्म-शुद्धि के लिए प्रार्थना करते थे। छत्तीस वर्ष की आयु में उन्होंने ब्रह्मचर्य का व्रत लिया और फीनिक्स बस्ती में उन्होंने सामूहिक प्रार्थना आरंभ की। वहाँ प्रतिदिन संध्या की प्रार्थना में अनेक धर्मों के भजन गाए जाते थे। अपने जीवन के अंतिम वर्षों में प्रार्थना के समय एकत्र लोगों से वह कहते थे कि ताली बजाकर मेरे साथ रामधुन गाओ। उनकी हार्दिक इच्छा थी कि भारत-भर में ऐसी सामूहिक प्रार्थना सभाएँ हों।

गांधी को छल-कपट बिल्कुल असह्य था। लेकिन गलती पकड़े जाने पर वह लोगों को सजा नहीं देते थे। अगर कोई व्यक्ति झूठ बोलता या कोई गलत काम करता था, तो वह स्वयं उपवास करके उसके लिए प्रायश्चित करते थे।

ब्राह्मण पुरोहितों की भाँति गांधी ने भी कई बार मंदिरों में मूर्ति की प्रतिष्ठा कराई और मंदिरों का उद्घाटन भी किया। उन्होंने विद्यालयों और अस्पतालों का शिलान्यास भी किया। नोआखाली में एक मंदिर को मुसलमानों ने नष्ट कर दिया था। गांधी ने वहाँ मूर्ति की पुनर्प्रतिष्ठा की। उन्होंने दिल्ली में लक्ष्मीनारायण मंदिर, काशी में भारत माता मंदिर, सेलू में हरिजनों के लिए एक मंदिर तथा रत्नागिरि में मारुति मंदिर का उद्घाटन किया था। रत्नागिरि में इस अवसर पर उन्होंने कहा: "मैं मारुति की मूर्ति की प्रतिष्ठा कर रहा हूँ, केवल इसलिए नहीं कि उनमें अलौकिक बल था। ऐसा बल तो रावण में भी था। लेकिन मारुति में आत्मबल था, आध्यात्मिक बल था जो उनके ब्रह्मचर्य और उनकी राम भक्ति का प्रत्यक्ष फल था।"

गांधी की राम नाम में अडिग आस्था थी। एक सिरफिरे हिन्दू ने प्रार्थना-सभा में जाते हुए, उनके सीने को गोलियों से छेद दिया, उस अंतिम समय भी गिरते-गिरते उनके मुंह से यह अंतिम शब्द निकले थे, 'हे राम'।

घटना-क्रम

२ अक्तूबर, १८६९ : पोरबंदर में गांधी का जन्म।

१८८१ : कस्तूरबा से विवाह।

नवंबर १८८७ : मैट्रिक पास किया।

अक्तूबर, १८८८ : वकालत पढ़ने के लिए इंग्लैंड पहुँचे।

जून १८९१ : बैरिस्टर बने, भारत लौटे।

अप्रैल १८९३ : दक्षिण अफ्रीका रवाना हुए।

१८९६ और १९०१ : भारत आए।

१९०१ : राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन में पहली बार शामिल हुए।

१९०३ : 'इंडियन ओपीनियन' का काम सँभाला।

१९०४ : फीनिक्स बस्ती की स्थापना।

१८९९ : बोअर युद्ध तथा १९०६ में जुलू-विद्रोह के समय भारतीय सेवादल दस्ते का संगठन और नेतृत्व किया।

१९०६ : ब्रह्मचर्य-व्रत धारण किया।

१९०६ : और १९०९ : इंग्लैंड गए।

१९०८ : दक्षिण अफ्रीका में पहली बार कैद।

१९१० : टाल्स्टाय बाड़ी की स्थापना।

१९१३ : दक्षिण अफ्रीका में ऐतिहासिक सत्याग्रह का नेतृत्व।

१९१४ : दक्षिण अफ्रीका छोड़कर जनवरी १९१५ में भारत पहुँचे।

१९१५ : साबरमती आश्रम, १९३३ में वर्धा आश्रम और १९३६ में सेवाग्राम आश्रम की स्थापना की।

१९१७ : चंपारन सत्याग्रह शुरू किया।

१९१८ : खेड़ा में प्रथम कर-बंदी आंदोलन।

१९१९ : अमृतसर में जलियाँवाला बाग हत्याकांड।

१९१९ : 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' का प्रकाशन।
१९२१ : असहयोग आंदोलन छेड़ा।
१९२२ : भारत में पहली बार कैद गए।
१९२७ : खादी प्रचार के लिए दौरा किया।
१९३० : दांडी यात्रा और नमक-सत्याग्रह का नेतृत्व किया।
१९३१ : लंदन में गोलमेज सम्मेलन में भाग लिया और यूरोप की यात्रा की।
१९३३ : हरिजनों के निमित्त देश का दौरा किया।
१९३३ : साप्ताहिक 'हरिजन' आरंभ।
१९३७ : नई तालीम की शुरुआत की।
१९४२ : 'भारत छोड़ो' आंदोलन चलाया।
१९४२ से १९४४ तक : आगा खाँ महल में आखिरी कैद काटी।
१९४८, ३० जनवरी : महाप्रयाण।